Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

O152, 6x1, 1
M6

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152,6x1,1 8388
M6

Vishwambhar Nath
& Siddhanath, ed
Gaddhapath,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152,6x1,1
M6
सिद्धपाद शिवाचार्य 84664
जङ्गमवाडी मठ वाराणसी
दि.- 16-1-2E

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152,6x1,1 8388
M6

Vishwambhar Nath
& Siddhanath, ed
Gaddhapath,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गद्य-पथ

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No...

सम्पादक
डॉ० विश्वम्भर नाथ
डॉ० सिद्धिनाथ श्रीवास्तव

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद—१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152, 6x1,1
M6

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8368

प्रथम संस्करण : १९८६

प्रकाशक
लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद

मूल्य : रु० ७·५०

मुद्रक
इलाहाबाद प्रेस
३७०, रानी मंडी
इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुक्रम

पेट : प्रताप नारायण मिश्र	::	१७
कवि कर्त्तव्य : महावीर प्रसाद द्विवेदी	::	२०
ईर्ष्या : रामचन्द्र शुक्ल	::	३५
साहित्य देवता : माखनलाल चतुर्वेदी	::	५१
भारतीय संस्कृति और नारी : महादेवी वर्मा	::	६०
शिरीष के फूल : हजारी प्रसाद द्विवेदी	::	७०
रज़िया : रामवृक्ष बेनीपुरी	::	७५
बन्दी पिता का पत्र : कमलापति त्रिपाठी	::	८५
अकेलापन और पार्थक्य : गजानन माधव मुक्तिबोध	::	९५
निज भाषा उन्नति अहे : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	::	१०३
सदाचार का तावीज : हरिशंकर परसाई	::	१०६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदी निबन्ध : एक संदृष्टि

संवेदनशील व्यक्तित्व विशिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का कलात्मक प्रयोग करता है। जिससे उसकी स्वरूपगत विविधता एवं अभिव्यक्ति क्षमता मुखरित होती है। आत्म चिंतन की अवधि में अनुभूतियों का मानसिक व्यापार विषय वस्तु के अनुरूप कृतिकार की अंतश्चेतना को व्यक्ति करता है। आत्म व्यथा के सम्यक् प्रतिफलन के लिए वह शाब्दिक चयन एवं उसके कलात्मक नियोजन का विधान करता है। उसके इसी कौशल के आधार पर जब सर्जनात्मक व्यापार संपन्न होता है तब कृतिकार आत्मतोष का अनुभव करता है। दैनिक व्यवहार में प्रचलित सामान्य भाषा उसकी दृष्टि में असफल हो जाती है क्योंकि उसकी अनुभूतियाँ सामाजिक परिवेश से उद्-बुद्ध होते हुए भी विशिष्ट कोटि की होती हैं। इसी वैशिष्ट्य निरूपण के लिए भाषा का जो स्वरूप निर्मित होता है उसे काव्यभाषा की संज्ञा दीं जाती है। काव्य भाषा सामान्य भाषा से उद्भूत होते हुए भी वह सामान्य-भाषा से पृथक एवं अभिव्यक्ति क्षमता में उत्कृष्ट होती है।

हिन्दी आर्यभाषा परिवार की विशिष्ट एवं सारगर्भित भाषा है। सामाजिक व्यवहार एवं साहित्यिक कलेवर में भाषाओं के सामान्य मानदण्ड की ही भाँति इसमें भी स्वरूपगत विभेद दृष्टिगत होता है। सामाजिक क्रिया-कलापों में इसका स्वरूप सामान्य भाषा की भाँति एवं साहित्यिक परिवेश में विशिष्ट रूप ग्रहण करने के कारण काव्यभाषा के रूप में व्यवहृत होता है। शास्त्रीय संदर्भों में काव्य एवं साहित्य पर्याय रूप में स्वीकृत हैं। शब्द अर्थ सहभाव ही साहित्य है। साहित्य अथवा काव्य की प्रमुखत: दो विशिष्ट विधाएँ हैं— गद्य एवं पद्य।

साहित्यकार प्रथमतः मानव है बाद में रचनाकार। सांसारिक क्रम में वह भी अन्य सामाजिक प्राणियों की ही भाँति हर्ष, विनोद, विषाद, आत्म-ग्लानि, क्रोध आदि भावों का अनुभव करता है। सामाजिक विशिष्ट अनुभूतियाँ ही उसे साहित्य सर्जन के लिए प्रेरित करती हैं। वह साहित्य के आदर्शों के प्रति उन्मुख होता है और आत्मानुभूति को सामाजिक अनुभूति में परिणत कर देता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कृतिकार हृदय एवं मस्तिष्क प्रधान सांसारिक प्राणी है। काव्य संरचना के क्रम में हृदय एवं मस्तिष्क का प्रवल योगदान है। हृदय राग प्रधान एवं मस्तिष्क बुद्धि प्रधान अवयव हैं। राग की प्रधानता के कारण काव्य की विशिष्ट विधा पद्य एवं बौद्धिकता की प्रधानता के कारण गद्य का आविर्भाव होता है। शिल्पगत वैशिष्टय की दृष्टि से गद्य के विविध रूप उपलब्ध होते हैं। प्रबंध, निबन्ध, लेख, संस्मरण, डायरी, यात्रा-साहित्य, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, नाटक, उपन्यास, एकांकी आदि गद्य विधान के ही प्रतिफल हैं। निबन्ध गद्य की इन विविध विधाओं में सर्वश्रेष्ठ विधा है जिसमें चिंतन का परिष्कृत स्वरूप अभिव्यक्ति पाता है। निबन्ध गद्य का उत्कृष्ट रूपविधान है इसीलिए इसे कसौटी के रूप में स्वीकार किया गया है।[1]

वर्तमान परिवेश में निबन्ध शब्द विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति का सूचक है अंग्रेजी शब्द 'एसे' (ESSAY) के पर्याय रूप में प्रयुक्त होने के कारण इसमें उसके वैशिष्ट्य को सूचित करने की क्षमता लक्षित होती है। 'ऐसे' का शाब्दिक अर्थ है—स्वछंद विचारों का मुक्त प्रयोग। 'एसे' की ही भाँति किसी भी विषय का संगठित, स्वतंत्र, और स्वच्छन्द विधान ही निबन्ध है और आत्मचिंतन की सहज अभिव्यक्ति ही इसका अभिप्रेत है। 'एसे' फ्रांसीसी शब्द 'एसेइर' के अनुकरण पर निर्मित है जिसका अर्थ प्रयास, प्रयत्न आदि है। 'एसे' इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता फ्रांस के मिकेल माँटेन ही निबन्ध के जनक माने जाते हैं। उनका कथन कि अपने निबन्धों में मैं स्वयं अपने को चित्रित करता हूं और पुस्तक का खुद विषय हूँ,'[2] निबन्ध वैशिष्ट्य को लक्षित करता है।

संस्कृत वाङ्मय में दार्शनिक अभिव्यक्ति के लिए निबन्ध शब्द का प्रचलन उपलब्ध होता है। कोई भी मौलिक कृति इनकी दृष्टि में निबन्ध या प्रवन्ध है चाहें उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य हो; पद्य हो। शब्द कल्पद्रुम निबध्नातीति निबन्धः (जो बाधता वहीं निबन्ध है) के आधार पर बन्धन को ही निबन्ध

१—गद्यं कवीनाम् निकषं वंदति।

२—इट इज माईसैल्फ आई पोट्रेंया आई एम माई सैल्फद सब्जेक्ट आफ द बुक।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वीकार करता है। दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों को सीकर सुरक्षित स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया ही निबन्ध है। कालांतर में विशिष्ट मतों एवं दार्शनिक आख्याओं के क्रमबद्ध निबन्धन के लिए इसका प्रयोग प्रारंभ हो गया। इनकी दृष्टि में एकसूत्रता ही निबन्ध की मूल प्रवृत्ति है जिससे वस्तु का क्रमिक एवं आकर्षक स्वरूप निर्मित होता है।

'आक्सफोर्ड अंग्रेजी कोश' निबन्ध को संक्षिप्त आकार की रचना स्वीकार करता है।[1] जे० बी० प्रीस्टले की दृष्टि में सच्चा निबन्ध रहस्यालाप या प्रेम से किए हुए संलाप के समान होता है और सही मानी में जो निबन्धकार होते हैं पाठकों से उनकी हित वार्ता चतुराई से भरी तथा प्रभावोत्पादक होती है। निबन्धकार एक एक शब्द अपने हृदय के अंतरतम में बोलता है। उसका लेखन अंतस्तल की आकुलता को व्यक्त करता है।[2]

निबन्ध के संदर्भ में 'डब्लू० ई० विलियम्स' के विचार समीचीन प्रतीत होते हैं, निबन्ध की संक्षिप्त परिभाषा यह है कि वह गद्य रचना का एक प्रकार है जो बहुत ही छोटा है। उसमें केवल वर्णन नहीं होते। कभी कभी अपनी बातों को सिद्ध करने के लिए निबन्धकार प्रसंग की अवतारणा करते हैं, पर उनका मूल उद्देश्य कथा कहना नहीं होता। निबन्ध लेखक का मुख्य कार्य सामाजिक, दार्शनिक, आलोचक या टिप्पणीकार जैसा होता है।[3] पाश्चात्य विचारक डा० जानसन निबन्ध को मस्तिष्क का शिथिल प्रक्षेपण एवं बेकन आकार की संक्षिप्तता एवं बुद्धि चमत्कार का निदर्शन स्वीकार करते हैं।

भारतीय कोशों एवं विचारकों की दृष्टि में निबन्ध का स्वरूप विवेचित होता रहा है। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी शब्द सागर' कोश में निबन्ध की परिभाषा, बन्धन, वह आख्या जिसमें अनेक मतों का संग्रह हो, किया गया है। संस्कृत में प्रबन्ध शब्द भी निबन्ध के अर्थ में व्यवहृत होता रहा है।[4] अंतर मात्र यही था कि प्रबन्ध का क्षेत्र निबन्ध की

१—द एसे इज ए कम्पोजीशन आफ मॉडरेट लेंथ।
२—हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग १३ पृ० ५६।
३—वही। पृ० ५६। ४—हिंदी शब्दसागर संक्षिप्त, । पृ० ५५१।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपेक्षा व्यापक था। दोनों शब्दों में प्रयुक्त उपसर्ग उसकी सीमा को संकेतित करते हैं। 'प्र' विस्तार सूचक एवं 'नि' लघुता सूचक उपसर्ग हैं। शब्दार्थ की दृष्टि से दोनों शब्द समान है। स्वरूपगत विभेद होते हुए भी इनमें रूपगत समानता विद्यमान है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि में निबन्ध विशिष्ट लक्षणों से युक्त गद्य रचना है। 'आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो।'[1]

बाबू गुलाबराय की दृष्टि में निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवन तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया गया है।[2] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी निबन्ध के परिप्रेक्ष में विचार करते हुए कहते है कि असम्पूर्णता का विचार न करने वाला गद्य रचना का वह प्रकार जिसमें स्वानुभूति की प्रधानता हो, विषय निरूपण मे स्वतन्त्रता हो, जिसमें लेखन का व्यक्तित्वपूर्ण रूप से प्रतिविम्बि हो, जिसकी शैली मौलिक तथा साहित्यिक कोटि की हो, निबन्ध कहलाये गा।[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गद्य संचरना की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें कोई निबन्धकार किसी विशिष्ट विषय पर पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ अपने बुद्धिसंगत विचारों को प्रयत्न पूर्वक, संक्षिप्त आकार अभिव्यक्त करता है।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से विषय प्रधान एवं विषयी प्रधान निबन्ध उपलब्ध होते हैं। विषय प्रधान निवन्धों में विवरणात्मक एवं वर्णनात्मक निबन्ध एवं विषयी प्रधान निवन्धों में विचारात्मक, भावात्मक एवं आत्मपरक निवन्धों की कोटियाँ की जाती है।

१—हिंदी साहित्य का इतिहास। पृ० ४८२।
२—काव्य के रूप। पृ० २३६।
३—निबन्ध निचय प्राक्कथन। पृ० २५।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्णनात्मक निबन्धों में वस्तु, दृश्य, स्थान के वर्णन के प्रति निबन्धकार की दृष्टि केन्द्रित रहती है। विषय वस्तु के निरूपण में निबन्धकार की तूलिका इतनी सजग रहती है कि कथ्य जीवन्त एवं मोहक हो उठता है। नदी, पर्वत श्रृंखला, तीर्थ स्थली, यात्रा विवरण का वर्णन परक विवेचन निश्चित रूप में विषय को नवीन ज्योति प्रदान करते हैं। सहज विषय भी निबन्धकार की कल्पनात्मक क्षमता से आकर्षक स्वरूप प्राप्त करता है। बालकृष्ण भट्ट माधवप्रसाद मिश्र, महावीर द्विवेदी के निबन्धों में वर्णनात्मक निबन्धों की उपलब्धि होती है।

विषयपरक निबंधों की दूसरी कोटि विवरणात्मक निबंधों की है। इसमें किसी घटना या वृत्तांत का निरूपण होता है, ऐसे निबंधों में लेखक की आत्मीयता घटनाओं के प्रति अधिक जागरूक होती है। वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक निबंधों में एकरूपता होती है अंतर केवल इतना है कि प्रथम स्थान परक एवं द्वितीय कालपरक होता है। एक में किसी स्थान विशेष एवं दूसरे में किसी अवधि विशेष में घटित घटना का निरूपण होता है। प्रथम में क्रियाहीन पदार्थों का एवं द्वितीय में क्रियाशील पदार्थों का चित्रण किया जाता हैं। विवरणात्मक निबंध कल्पनाप्रसूत होते है। इनमें शब्द चित्रों के माध्यम से वस्तु स्थिति का ऐसा चित्रण किया जाता है कि पाठक निबंधकार की अनुभूति और कल्पना से पूर्णतया परिचित सा हो जाता है। व्यास शैली में ऐसे निबंध अभिव्यक्ति पाते हैं। महादेवी वर्मा, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि इसी वर्ग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं।

विषयी प्रधान निबंधों की प्रथम कोटि विचारात्मक निबंधों की है। ऐसे निबंधों में निबंधकार का व्यक्तित्व होता रहता है, इसी कारण इसे व्यक्ति-व्यंजक निबंध की संज्ञा दी जाती है। विचारात्मक निबंध बौद्धिकता से परिपूर्ण गंभीर चिंतनमयी अभिव्यक्ति के परिचायक होते हैं। परम्परा सापेक्ष चिंतनशील विषयों पर निबंधकार मौलिक क्रम में चिंतन कर वस्तु को नवीन दृष्टिकोण से आलोकित करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० नगेन्द्र एवं जैनेन्द्र आदि इसी वर्ग के प्रमुख

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिंतक निबन्धकार हैं।

भावात्मक निबंधों में बौद्धिकता की प्रधानता न होकर भावों की प्रधानता होती है। इसमें भाव पक्ष सबल एवं बुद्धि पक्ष गौण रहता है। ऐसे निबंधों में हृदय पक्ष की अभिव्यक्ति होती है। हृदय सांसारिक क्रम में जो अनुभूत करता है, रचनाकार उसे उसी रूप में रचना में अभिव्यक्त करता है। वह भावात्मक तरंगों में प्रवाहित होता हुआ पाठक को भी उसी मनोदशा में तरंगायित होने के लिए विवश कर देता है। ऐसे निबंध में सांगीतिक तत्वों की बहुलता उपलब्ध होती है। यही कारण है कि पाठक रसमग्न हो जाता है। भावात्मक निबंधों की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें निबंधकार एक विशेष भाव की रागात्मक अभिव्यक्ति के लिए तत्पर रहता है। हास्य व्यंग प्रधान निबंध भी इसी कोटि के निबंध है। प्रतापनारायण मिश्र, सरदार पूर्ण सिंह, रघुबीर सिंह, रामवृक्षवेनी पुरी आदि निबंध लेखक इस परंपरा का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं।

आत्मपरक निबंध वस्तु परक निबंधों की अपेक्षा निबंधकारों के व्यक्तित्व को महत्व देते हैं। ऐसे निबंधों में लेखक आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वतंत्र होता है। यही कारण है कि ऐसे निबंध रचनाकार के व्यक्तित्व को पारदर्शी आइने की भाँति प्रतिबिंबित करते रहते हैं। व्यक्ति व्यंजक निबंधकार दैनिक जीवन में प्राप्त होने वाली साधारण या उपेक्षित विषय को कथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं एवं सहजता पूर्वक उसका चित्रण करते हैं। व्यक्तित्व की क्षमता से अभिव्यक्ति पाकर साधारण तथ्य भी नूतन चिंतन उद्घोष करने लगते हैं। निबंधकार का व्यक्तित्व पाठक को यह स्वीकार करने के लिए विवश करता है कि ऐसा तथ्य चिंतन निश्चित रूप में उपेक्षित रहा है। आत्म के प्रति सजग दृष्टि होने के कारण ऐसे निबंध कभी कभी निबंधकार की अहंकार मूलक प्रवृत्ति के परिचायक से हो जाते हैं, क्योंकि कृतिकार आत्मचिंतन की अभिव्यक्ति उसी क्रम में करता हैं जिस क्रम में भावों का जागरण होता है। कृत्रिम आवरण से रहित इनकी अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष होती हैं, यही कारण है कि पाठक उसकी अभिव्यक्ति में वास्तविकता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से परिचित होता है। एलेक्जेण्डर स्मिथ की उक्ति 'अपने आत्म के बारे में बातें करना कोई जरूरी नहीं है कि अहंकार ही मान लिया जाय। एक सही, सामान्य अच्छा इंसान, दुनियाँ की तमाम बातों की अपेक्षा अपने बारे में कहीं ज्यादा ईमानदारी से कुछ कह सकता है, कम से कम ईमानदार बातें जानने की दृष्टि से पाठक निबंधकार से बहुत कुछ उपलब्ध भी कर सकता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, डा० विद्यानिवास मिश्र, सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि इसी कोटि के निबंधकार हैं।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से हिन्दी निबंधों के विविध आयाम हैं। निबंध के क्षेत्र में रेखाचित्रों का अपना विशेष महत्व है। 'रेखा चित्र' शाब्दिक क्रम में चित्रकला से संदर्भित है। साहित्य की सीमा में इसका प्रयोग विवादास्पद होना स्वाभाविक है। चित्रकला में निपुण चित्रकार जिस प्रकार रेखाओं के समुचित समंजन के आधार पर आत्मकथ्य की अभिव्यक्ति करता है उसी प्रकार रेखाचित्रकार भी रेखा के स्थान पर शब्दों का चित्रमय प्रयोग कर वस्तुस्थिति का रूपांकन करता है। यही कारण है कि कुछ साहित्यकार इसे रेखाचित्र की संज्ञा न देकर शब्दों की प्रधानता के कारण शब्दचित्र कहते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु प्रमाण हैं। शब्दों के द्वारा विशिष्ट कथ्य का सम्यक् प्रतिफलन ही रेखाचित्र हैं। ऐसे निबंधकारों में निबंधकार की मनःस्थिति एवं चित्रकार के कौशल का होना अनिवार्य है। महादेवी वर्मा की प्रसिद्धि का मूलकारण रेखाचित्र ही हैं।

निबंध विधा के द्वितीय आयाम का प्रतिनिधित्व करता है—रिपोर्ताज। यह पत्रकारिता की साहित्य के प्रति महत्वपूर्ण देन है। पत्रकार और साहित्यकार के मध्य संयोजक कड़ी का कार्य रिपोर्ताज करता है। अंतर केवल इतना है कि प्रथम में दृष्टि तथ्यात्मक होती है और द्वितीय में व्यक्तिगत अनुभूतिमूलक। लक्ष्मीचंद जैन, ठाकुर प्रकाशचंद्र गुप्त, प्रभाकर माचवे, निर्मल वर्मा, शिवदान सिंह चौहान आदि इसी विधा के प्रतिनिधि निबंधकार है।

संस्मरण निबंध विधा का तृतीय आयाम है। ललित निबंधों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। अतीत के प्रति दृष्टि केन्द्रित होने के कारण ऐसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निबंधकार स्मृति के आधार पर घटनाओं का निरूपण कर आत्मसंतोष का अनुभव करते हैं। वर्तमान परिवेश को अतीत की कसौटी पर कस कर ऐसे निबंधकार समाज को नवीन चेतना प्रदान करते हैं। महापुरुषों के मानवीय गुणों को अभिव्यक्त कर संस्मरणकार सामाजिक चेतना को स्वर देता है। और पाठक को नवीन दृष्टिपथ प्रदान कर जीवनयापन के लिए प्रेरित करता है। ऐसे निबंधों में निबंधकार का चरित्र प्रतिबिंबित होता रहता है। वह चारित्रिक चित्र न होकर संस्मरणकार का व्यक्तिगत चरित्र होता है। महादेवी वर्मा के संस्मरण इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

उद्भव एवं विकास की दृष्टि से हिंदी निबन्ध समय एवं प्रवृत्ति सापेक्ष रहा है। इसके प्रमुखतः चार आयाम उपलब्ध होते हैं। अभ्युदय काल या भारतेंदु युग (सन् १८५० से १९०० ई० तक), विकास काल या द्विवेदी युग (सन् १९०० से १९२० तक), उत्कर्ष काल या शुक्ल युग (१९२० से १९५५ ई० तक) एवं वर्तमान काल या शुक्लोत्तर युग (१९५५ से आज तक) निबंधों के विकास क्रम में स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल के आधार पर ही युग निर्धारण किया जाता है। ये युग प्रवर्तक निबन्धकार हैं।

भारतेन्दु युग के पूर्व हिंदी निबन्धों की परम्परा उपलब्ध होती है लेकिन जिन तात्विक विशेषताओं से परिपूर्ण गद्य रचना को हिंदी निबन्ध की संज्ञा दी जाती है, ऐसे लक्षण इन निबन्धों में दृष्टिगत नहीं होते हैं। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह इसी परम्परा के निबन्धकार हैं जो सामाजिक क्रम में प्रचलित भाषा को निबन्ध का आधार स्वीकार करते हैं। उर्दू भाषा की शब्दावली के साथ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इन निबन्धकारों का अपना प्रयोग रहा है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने निबन्ध लेखन के क्रम में न तो उर्दू प्रधान शब्दावली का और न संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग स्वीकार किया। खड़ी बोली को निबन्ध की अभिव्यक्ति का साधन स्वीकार करते हुए भाषिक परिमार्जन एवं परिष्कार द्वारा आत्म कथ्य का विवेचन करते हुए नूतन रचना पद्धति का आविर्भाव किया यद्यपि प्रारम्भिक प्रयोग के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्रम में भाविक असमर्थता, व्यंजना शक्ति का अभाव एवं कथ्य संप्रेषण की अक्षमता उपलब्ध होती है फिर भी हिंदी जगत् के लिए उनका मार्ग निर्देशन श्लाघनीय है ।

राष्ट्रीय जागरण का उन्मेष काल होने के कारण भारतेंदु कालिक निबंधकारों का दायित्व अनेकमुखी रहा है। प्राचीनता के प्रति अनासक्ति एवं नूतनता के प्रति आसक्ति तथा उसका अभिनन्दन ही इनका अभिप्रेत रहा है। यही कारण है कि राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत ये साहित्यकार राष्ट्र समाज एवं साहित्य के त्रिकोण में आत्मचिंतन के लिए विवश थे पराधीनता के प्रति विद्रोहात्मक स्वर मुखरित कर जनजीवन में नवीन सामाजिक चेतना को स्फुरित करना एवं नूतन परिवेश में बाधक परिस्थितियों के निवारणार्थ सतत् प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना ही इनका परम अभिप्रेत था।

इस युग के निबन्धकार साधारण से साधारण विषय को प्रतिपाद्य से रूप में स्वीकार कर गम्भीर चिंतन जनता के समक्ष प्रस्तुत करते थे। सामाजिक चेतना के प्रति पाठक को आकर्षित करने की इनमें अद्भुत क्षमता थी। राष्ट्रीय प्रेम एवं भाषा प्रेम दोनों इस युग की अनिवार्य विशेषताएँ हैं। इनकी दृष्टि में भाषा का समृद्ध स्वरूप ही राष्ट्र को संयमित और समृद्ध रूप प्रदान करता है। सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाई भाषा है। 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का उद्घोष ही साहित्य की कुंजी है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, एवं लाला श्रीनिवास दास इस युग के प्रतिनिधि निबन्धकार हैं। इनके निबन्धों में राष्ट्रीय एवं भाषा प्रेम का अद्भुत समन्वय उपलब्ध होता है। राष्ट्रीय चेतना से संचालित होने के कारण इन निबन्धकारों का साहित्य युग चेतना से अनुप्राणित रहा है।

प्रतापनारायण मिश्र के निबन्ध प्रारंभिक तात्विक निबन्धगत वैशिष्ट्य से परिपूर्ण हैं। मिश्रजी आत्मव्यंजक साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक युग की अपनी विशिष्ट मान्यताएँ होती है जिनका अनुपालन युगीन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साहित्यकार के लिए पथ प्रशस्त करता है। साहित्य की दृष्टि से भारतेंदु काल में आत्मव्यंजक निबन्धों का सूत्रपात इनकी विशिष्ट उपलब्धि रही है। मिश्र जी विषय एवं शिल्प की दृष्टि से अत्यंत ही सहज काँटे के निबन्धकार हैं। इनके निबन्धों में वैयाक्तिक चेतना का स्वर लक्षित होता है। विषय के चयन के प्रति इनकी उदारता श्लाघनीय है।

भारतेंदु युग के समापन के अनन्तर हिन्दी निबन्ध विधा का द्वितीय आयाम द्विवेदी युग के रूप में प्रारंभ होता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग के प्रतिनिधि एवं मार्ग दर्शक निबन्धकार हैं। द्विवेदीजी ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी निबन्ध को नवीन चेतना एवं अभिव्यक्ति क्षमता प्रदान की। अपने प्रारंभिक क्रम में खड़ी बोली अपरिष्कृत स्वरूप लेकर निबन्धों के क्रम में प्रयुक्त हुई थी, द्विवेदी जी ने निबन्ध लेखन के साथ साथ भाषिक सन्दर्भ में विकारपरक शब्दावली के प्रयोग का विरोध किया एवं भाषा की व्याकरणगत शुद्धि पर बल देते हुए अन्य निबन्धकारों को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। उत्थानकाल की अमर्यादित भाषा वैचारिक अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं थी उसका एक मात्र कारण भाषागत अशुद्धियाँ थीं। इस युग के निबंधकार भाषा के प्रति अधिक सचेष्ट रहे हैं। यही कारण है कि द्विवेदी युग की भाषा प्रांजल एवं परिष्कृत रही है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का पाश्चात्य देशों पर प्रभाव, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान पुस्तकीय समीक्षा से सरस्वती द्वारा द्विवेदीजी ने भारतीय परिवेश को व्यापक रूप प्रदान किया है। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में राष्ट्र प्रेम, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थापरक दृष्टिकोण, चित्रात्मक अभिव्यक्ति के प्रति आसक्ति एवं विवेचना तथा गवेषणापरक निबंधों के प्रति आग्रह दृष्टिगत होता है। व्यक्तिवादी निबंध लेखन की परम्परा जिसका प्रवर्तन भारतेंदु युग में होता है द्विवेदी युग तक आते आते समाप्त हो जाती है। इसका एक मात्र कारण यह है कि इन निबंधकारों में निबंधगत विषयवस्तु साधारण कोटि की न होकर विशिष्ट अभिप्रेत से समन्वित रही है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० माधवप्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुन्दर दास,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी, अध्यापक पूर्ण सिंह, इस युग के सशक्त निबंधकार हैं। बालमुकुन्द गुप्त द्विवेदी युग एवं भारतेंदु युग के संयोजक निबंधकार हैं। सन्धि बिन्दु पर स्थित होने के कारण इनके निबंधों में दोनों युग की मान्यताओं का सफल निर्वाह उपलब्ध होता है।

हिन्दी निबंध का उत्कर्ष काल आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्रम में विकास पाता है। उत्थान की दृष्टि से यह काल हिन्दी का ऐतिहासिक काल रहा है। विषय वस्तु प्रधान निबंधों की संरचना इस युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। बुद्धि एवं हृदय दोनों पक्षों का समुचित समन्वय इस युग के निबंधकारों में सहजता पूर्वक उपलब्ध होता है। व्यक्तित्व की विविधता, परिष्कृत चिंतन, प्रभावोत्पादक भाषा शैली इन रचनाकारों का वैशिष्ट्र्य रहा है। आचार्य शुक्ल के युग में व्यावहारिक एवं समीक्षात्मक आलोचना परक निबंध विशेष मात्रा में लिपिवद्ध किये गये। वह इस युग की नवीन उद्-भावना थी। हिन्दी आलोचना की प्रतिष्ठा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी कृतियाँ सिद्धांत एवं व्यवहार के क्रम में उपलब्ध होती हैं। आधुनिक युग के निबंधकारों में शुक्ल जी का नाम अग्रणी रहा है। इनके निबंधों को मनोविकार परक निबंध की संज्ञा दी जाती है। जिसमें शुक्ल जी ने मनोविकारों का मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक निरूपण किया है। उत्साह, श्रद्धा और भक्ति, करुणा, लज्जा और ग्लानि, ईर्ष्या आदि इस कोटि के सारगर्भित निबंध हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास प्रथम चरण के एवं कालातंर में वासुदेव शरण अग्रवाल, महादेवी वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद प्रसाद मिश्र, पं० कमलापति त्रिपाठी, रामवृक्ष बेनीपुरी एवं महा पं० राहुल सांकृत्यायन इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी मूलतः कवि रूप में प्रशंसित रहे हैं, निबंधकार रूप में नहीं। 'प्रभा' और 'कर्मवीर' का संपादन करते हुए चतुर्वेदी जी ने पत्र-कार दायित्व का समुचित निर्वाह किया। संपादकीय लेखों की गद्यमय अभिव्यक्ति निबंधकार की कर्तव्यपरायणता को संकेतित करती है। साहित्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवता, 'एक भारतीय आत्मा' एवं 'अमीर इरादें गरीब इरादे' आपके चर्चित भावात्मक निबंध संग्रह हैं। जिसमें भाषा एवं शैली का अद्‌भुत समन्वय लक्षित होता है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की एकता इनकी गद्यमय अभिव्यक्ति को कवित्व की सी सरसता प्रदान करती है। काव्य-दोषों से युक्त होते हुए भी इनकी रचना पाठकों को जीवंतता प्रदान करती है। इनकी अभिव्यक्ति में स्वामी रामतीर्थ की भावुकता, सरदार पूर्ण सिंह की लाक्षणिकता एवं लोकमान्य तिलक की गंभीरता का स्वर मुखरित होता रहता है।

महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा की सशक्त कवयित्री हैं। कविता के क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित करते हुए भी गद्य के क्षेत्र में इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी ख्याति के मूल कारण संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं, जिनके माध्यम से आत्मकथ्य को सहज क्रम में अभिव्यक्ति कर वस्तु स्थिति का रूप चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतीत के चलचित्र शृंखला की कड़ियाँ, स्मृति की रेखाएँ एवं मेरा परिवार इनके प्रतिनिधि निबंध संग्रह हैं। सामाजिक चेतना से अनुप्राणित होने के कारण इन निबंधों में दलित एवं शोषित वर्ग के प्रति अपार सहानुभूति की अभिव्यंजना हुई हैं। वस्तु सत्य की वास्तविक प्रतीति इनके निबंधों की अपनी विशेषता है, जिसके कारण पाठक के सम्मुख इनका स्वरूप प्रतिविम्बित होता जाता है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ललित निबंध लेखन की परम्परा के सिद्धहस्त निबंधकार हैं। भाव एवं भाषा के प्राजंल स्वरूप से निर्मित इनके निबंध गम्भीरता एवं विनोद के मूर्तिमान स्वरूप हैं। कल्पनात्मक चमत्कार मनोरंजन परक उपादानों से अभिव्यक्त होते रहते हैं। कालिदास के लालित्य बोध एवं रवींद्रनाथ ठाकुर की सौंदर्य दृष्टि तक द्विवेदी की चेतना एकरस व्याप्त रहती है। मानवता के प्रबलतम पोषक द्विवेदी जी के निबन्धों में मानवतावादी स्वर मुखरित होते रहते हैं। सांस्कृतिक चेतना से आलोकित इनके निबन्ध साहित्य एवं संस्कृति के लिए मंगल परक विधान करते हैं। इनके निबन्धों को पढ़ते हुए पाठक नूतन स्फूर्ति एवं उत्कंठा से आप्लावित होता रहता है। अशोक के फूल, विचार एवं वितर्क, मध्यकालीन धर्म

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधना, कुटज, कल्पलता आदि इनके प्रमुख निवन्ध संग्रह हैं।

रामवृक्ष वेनीपुरी संस्मरणात्मक कोटि के निबंध लेखक हैं। रेखाचित्र निवंध विधा का नूतन आयाम है। वेनीपुरीजी के रेखाचित्र इनके व्यक्तित्व एवं अनूठी रचना शैली के परिचायक हैं। भाषा एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से इनके निवंध पाठकों को वस्तु स्थिति का प्रतिबिंब लक्षित करते हैं। इनके निबंधों में उर्दू फारसी वहुल शब्दावली के बीच अनपढ़ भोजपुरी का प्रयोग सहजतापूर्वक उपलब्ध होता है जो शैली की विलक्षणता के कारण पाठक के व्यक्तित्व में आमोद, व्यंग्य की सृष्टि करता है। विविध आयामों से परिपूर्ण इनका कथ्य शैली की रोचकता के कारण ही आकर्षक एवं रंजक प्रतीत होता है। लालतारा, माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब, मील के पत्थर प्रमुख रेखा- चित्रों के संग्रह हैं। जंजीरे और दीवारें, संस्मरणात्मक एवं वंदेवाणी विनायकी साहित्यिक निवंध संग्रह हैं। व्यक्ति व्यंजकता और व्यंग्य विनोद वृत्ति ही इनके निवंधों की विशेषता है। वेनीपुरी जी के रेखाचित्र सन्दर्भों से अनु- प्राणित हैं। 'लालतारा' में संकलित निवंध विद्रोहपरक स्वरों से, 'माटी की मूरतें' में संकलित निबंध ग्राम्यजीवन की सरलता, सौहार्द्र एवं स्वाभाविक ममत्व से एवं 'गेहूँ और गुलाब' शुद्ध रूप से प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से संदर्भित हैं।

निवंध विधा के विकास क्रम में वर्तमान काल नवलेखन युग का प्रति- निधित्व करता है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के अनन्तर लिखित निबंधों में लालित्य एवं व्यंग्य के प्रति आग्रह दृष्टिगत होता है। वर्तमान कलेवर में ललित निबंधों का लेखन प्रशस्तिपरक रहा है। टूटते हुए सामाजिक मूल्य, अलगाव वादी प्रवृत्ति, बौद्धिकता के प्रति आग्रह ने साहित्यकार को उन्मुक्त चिंतन के लिए विषम परिस्थिति का श्रीगणेश कर दिया है। परिणाम-स्वरूप आज का साहित्यकार चिंताग्रस्त होने के कारण आत्मकेंद्रित हो गया है, फिर भी व्यंग्य प्रधान निबंधों की संरचनात्मक प्रवृति के कारण यह युग भी विशेष उल्लेखनीय है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति असंतोष इन निबन्धकारों में तीव्रता के साथ व्यंजित हुआ है। व्यंग्यात्मकता युग-धर्म सी लक्षित होती है। आज का साहित्यकार जनतंत्र के अधिकार एवं कर्तव्य के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रति अधिक सचेष्ट हैं। डा० विद्यानिवास, डा० शिवप्रसाद सिंह, कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती, हरिशंकर परसाई, डा० इन्द्रनाथ मदान, रघुवीर सहाय, मृणाल पांडेय, शरद जोशी, आदि इस युग का प्रतिनिधित्व करने वाले सफल निबन्धकार हैं।

इन रचनाकारों में अकाट्य तार्किक चिंतन, यायावर प्रवृत्ति के प्रति व्यामोह, ऐतिहासिक चेतना के प्रति नूतन दृष्टि, धार्मिक मान्यताओं के प्रति आस्थापरक दृष्टिकोण, भारतीय संस्कृति के प्रति सद्भाव आंचलिकता के प्रति विशेष आग्रह, सामाजिक राजनैतिक विसंगतियों के प्रति नीर-क्षीर विवेकी प्रवृत्ति, ग्राम्य संस्कृति के भावाकुल उल्लास, पुरातनता के प्रति आसक्ति दृष्टिगत होती है। वर्तमान परिवेश में विषय विविधता के निरूपण में निबंधकारों ने अप्रतिम विद्वतापूर्ण लेखन का स्वरूप अभिव्यक्त किया है। निश्चित रूप में गद्य संरचना की यह विधा उत्तरोत्तर विकसित एवं महत्वपूर्ण होती जा रही है। अपने विकास क्रम में निबंध अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा प्रशस्त मार्ग की ओर अग्रसर हो रही है।

प्रस्तुत संकलन 'गद्य-पथ' का अभिप्रेत स्नातक स्तर के छात्रों के लिए गद्य का पथ-प्रदर्शन मात्र ही रहा है फिर भी संकलित निबंधों की एक विशेष क्रमबद्धता रही है जिससे गद्य के विविध प्रवृत्तिमूलक सोपानों का वास्तविक स्वरूप और विकासोन्मुखी प्रक्रिया का सामान्य बोध किसी भी पाठक के लिए सम्भव होगा, ऐसा विश्वास है। श्री दीनानाथ द्विवेदी, डॉ० श्री प्रसाद, श्री धरणीधर पाण्डेय एवं डॉ० लालमणि तिवारी की सत्प्रेरणा ही संकलन रूप में मूर्त है।

प्रकाशक 'लोकभारती प्रकाशन' के प्रति साधुवाद सहित।

डॉ० विश्वम्भर नाथ
डॉ० सिद्धिनाथ श्रीवास्तव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१ | पेट

पं० प्रतापनारायण मिश्र

इन दो अक्षरों की महिमा भी यदि अपरंपार न कहिए तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि वहुत बड़ी है। जितने प्राणी और अप्राणी, नाम रूप देखने-सुनने में आते हैं। सब ब्रह्मांडोदरवर्ती कहलाते हैं और ऐसे-ऐसे अनेकानेक ब्रह्मांड ब्रह्मदेव के उदर में स्थान पाते हैं। फिर क्यों न कहिए कि पेट बड़ा पदार्थ है और बड़े पदार्थ का वर्णन भी बड़ी ही वात है। अस्मात् पेट की तरह वात इतनी बड़ी है कि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तक ने अपना नाम दामोदर प्रकट किया है और इससे सबको यह उपदेश दिया है कि पेट ही वह रस्सी है जिसमें बँधे बिना कोई बच नहीं सकता। धर्म की दृष्टि से देखिए तो समस्त मान्य व्यक्तियों में सर्वोपरि अधिकार माता का होता है, क्योंकि उसने हमें नौ मास पेट में रक्खा है। प्राचीन काल के वीर पुरुषों का इतिहास पढ़िये तो जान पड़ेगा कि अनार्यों (राक्षसों) में महोदर (रावण के यहाँ का योद्धा) और आर्यों में वृकोदर (भीमसेन) अपने समय तथा अपने ढंग के एक ही युद्धकला-कुशल थे। इधर देवताओं के दर्शन कीजिए तो सबसे पहले लंबोदर (गणेशजी) ही आदिदेव के नाम से स्मृत होते हैं। मनोवृत्ति से कुछ रसिकता की झलक हो तो मनोहारिणी सुन्दरियों का अवलोकन कीजिए, ये भी मन्दोदरी, कृशोदरी आदि नामों से आदर पाती हैं। जबकि ऐसे-ऐसे प्रेम-प्रतिष्ठा के पात्रों की ख्याति उदर से सम्बन्ध रखती है तो साधारणों का तो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहना ही क्या है। सब पेट ही से उत्पन्न होते हैं और यदि आवागमन का सिद्धांत ठीक हो तो अन्त समय पेट में ही चले जाते हैं। जो आर्यों को फिलासफी न रुचती हो तो भी धरती के पेट से अथवा मांसाहारी पशु, पक्षी, कीट, पतंग से बचाव नहीं है। अब रहा संसार में स्थिति करने का समय, उसमें तो ऐसा कोई बालक-वृद्ध, मूर्ख-विद्वान, उच्च-नीच, धनी-दरिद्री है ही नहीं जो दिन-रात भाँति-भाँति के कर्त्तव्य, विशेषतः पेट ही की पूर्ति के अर्थ न करता हो। यों हम उनको धन्य कहेंगे जो अपने पेट की चिन्ता न करके दूसरों के पालन में सयत्न करते हैं। पर ऐसे लोगों की संख्या सदा सब ठौर बहुत स्वल्प होनी है। इसमें ऐसों को अदृश्य देवताओं की कोटि में रहने दीजिए और उन्हें भी लंका के महाराक्षसों में गिन लीजिए जो अपना पापी पेट पालने के अनुरोध से दूसरों को कुछ भी कष्ट क्यों न हो तनिक भी ध्यान नहीं देते। ऐसे भी लोगों की संख्या यहाँ बहुत नहीं है। किन्तु दिन दूनी दुर्दशा के बस हो के दस-बीस वर्ष में हो जाय तो आश्चर्य नहीं है क्योंकि 'बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्'। रहे सर्वसाधारण, जो पेट की धोखा देने के लिए बात-बात पर बहुत फूंक-फूंक पाँव न धर सकें तो कोई विचारशील उन्हें दोष भी नहीं लगा सकता क्योंकि सभी जानते हैं कि पेट की आँच बड़ी कठिन होती है। उसका सहन करना हर एक का काम नहीं है। इनकी प्रचंडता में लोक परलोक, धर्म-कर्म सभी के विचार भस्मीभूत हो जाते हैं। यह खाल की खलीती यदि उचित खाद्य से, स्वल्प परिश्रम के साथ भरती रहे, तो क्या ही कहना है, सभी इन्द्रियाँ पुष्ट, मन हृष्ट, बुद्धि फुरतीली और चित्त-वृत्ति सचमुच रसीली बनी रहती है। पर यदि धाये-धूपे किसी न किसी भाँति कुछ न कुछ मिलता रहे तो भी सुख, स्वच्छन्दता, नैरुज्य एवं निश्चिंतता का तो नाम न लीजिए। हाँ, जीवन पहिया जैसे-तैसे लुढ़कता-पुढ़कता चला जावेगा। किन्तु यदि, परमेश्वर न करे, कहीं किसी रीति से ठिकाना न हुआ तो बस कहीं ठिकाना न समझिये। इस क्षुधा यंत्र का नाम ही दोजख अर्थात् नर्क है। फिर इसके हाथों बड़े-बड़ों को जीते जी नर्क-यातना भोगनी पड़े तो क्या आश्चर्य है और परमेश्वर की न जाने क्या इच्छा है कि इन दिनों बरसों से चारों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ओर जन समुदाय की उदर पूर्ति में विघ्न ही विघ्न बढ़ाते हुए देख पड़ते हैं। इधर तो करोड़ों देश भाई दिन-दिन 'नहिं पट कटि नहिं पेट अगाही' का उदाहरण बनते जाते हैं और जिनका पेट भरा है वे इनकी ओर से साँस-डकार भी नहीं लेते। उधर को हमारे 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तु समर्थ' प्रभु हैं उन्होंने यह सिद्धान्त कर रक्खा है कि 'मोर पेट हाहू, मैं न देहों काहू' यह लक्षण देख-देख के विचारे भारत भक्त अपनी वाली भर पेट काट-काट के भी उद्धार का उपाय करते हैं। और इधर-उधर पानी पहाड़ लाँघते हुए, पेट पकड़े दौड़े-दौड़े फिरते हैं। पर जब देखते हैं कि कोई युक्ति नहीं चलती तो विवशतः कोई-कोई पेट मिसूसा मार कर बैठे रहते हैं, कोई-कोई दूसरों के पेट की पीड़ा दूर करने के उद्देश्य से उसकी भाँति चिल्लाया करते हैं, जिसके पेट में पीर उठती है। जहाँ यह दशा है वहां सबके सभी लोगों को मुँह बाये, पेट खलाये पड़ा रहना उचित नहीं है। नोबत् जठराग्नि फैलती रहेगी तो एक न एक दिन सम्भव है कि किसी को जलाये बिना न छोड़े। तस्मात् यही मुख्य कर्त्तव्य है कि सब जने सब को सहोदर भाव से देखें और समझ रखें कि पेट सभी का येन येन प्रकारेण पालनीय है। चाहु मखमल-सा चिकना और मक्खन-सा मुलायम हो, चाहे कठौती-सा कठोर हो, चाहे हांडी-सा कुदृश्य अथवा पुर-सा विहङ्गम हो, मोटी-झोंटी खरी-खोटी चार रोटी सभी के लिए चाहनी पड़ती हैं और इन्हीं की प्राप्ति के अलसठे मिलाना परम कृत्य है। यदि दैव ने हमें कुछ सामर्थ्य दी है तो चाहिये कि उसे अपने ही पेट में न पचा डालें, कौरा किनका दूसरों की आत्मा में भी डालें। और जो यह बात अपनी पहुँच से दूर हो तो भी केवल मुँह से नहीं बरन् पेट से यह प्रण कर लेना योग्य है कि पेट में पत्थर बांध के परिश्रम करेंगे, दुनिया भर के पेट में पाँव फैलावेंगे, सबके आगे न पेट दिखाते लजायेंगे, न पेट चिरवा के भुस भराने में भय खायेंगे पर अपनी और अपनों की पेटाग्नि के यत्न में जब तक पेट से साँसें आती-जाती रहेंगी तब तक लगे ही रहेंगे। यों तो पेट की लपेट बहुत भारी है पर आज इस कथा को यहीं तक रहने दीजिए और समझ लीजिये कि इतनी-सी पेट पड़े गुण ही करेंगी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२ | कवि-कर्त्तव्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी

कवि-कर्त्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी में कवियों के कर्त्तव्य से है। समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके हम यह लिखना चाहते हैं कि कवि का कर्त्तव्य क्या है। अपने मनोगत विचारों को हम थोड़े ही लिखना चाहते हैं।

अतः इस लेख को हम चार ही भागों में विभक्त करेंगे, अर्थात्—छन्द, भाषा, अर्थ और विषय। इन्हीं की यथाक्रम हम समीक्षा आरम्भ करते हैं।

छन्द

गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। यह समझना अज्ञानता की पराकाष्ठा है कि जो कुछ छन्दोबद्ध है सभी काव्य है। कविता का लक्षण जहाँ कहीं पाया जाय, चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में वही काव्य है। लक्षण-हीन होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य नहीं कहलाये जा सकते हैं, गद्य के विषय में कोई विशेष निर्दिष्ट करने की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी पद्य के विषय में है। इसलिये हम यहाँ पर पद्य ही का विचार करेंगे। भाषा, अर्थ और विषय के सम्बन्ध में जो कुछ हम कहेंगे वह गद्य के सम्बन्ध में भी प्रायः समानभाव से प्रयुक्त हो सकेगा।

जिन पंक्तियों में वर्णों या मात्राओं की संख्या नियमित होती है, वे छन्द

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहाती हैं, और छन्दों में जो कुछ कहा जाता है, वह पद्य कहलाता है। कोई-कोई छन्द और पद्य दोनों को एक ही अर्थ का वाचक मानते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें, उनका पद्य अच्छा ही होता है, परन्तु सामान्य कवियों के विषय के अनुकूल छन्द योजना करनी चाहिये। जैसे समयविशेष में रागविशेष के गाये जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होता है, वैसे ही वर्णन के अनुकूल वृत्त-प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है। गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्त-रूपिणी हार-लता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञानता दर्शित होती है। इस लेख में हम इस बात का विवेचन नहीं करना चाहते कि किस विषय के लिये कौन-सा छन्द प्रयोग में लाना चाहिए। काव्य के मर्मज्ञ निपुण कवि स्वयमेव जान सकते हैं कि कौन-सा छंद कहाँ विशेष शोभावर्धक होगा। प्राचीन संस्कृत कवि इसका पूरा-पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति छन्द में किया है, नीति का वंशस्थ में किया है, चन्द्रोदयादि का रथोद्धता में किया है, वर्षा और प्रवास का मन्दाक्रान्ता में किया है और स्तुति, शौर्य आदि का शार्दूल-विक्रीड़ित और शिखरिणी में किया है। यही नहीं; वृत्त-रचना में छन्दशास्त्र के नियमों के अतिरिक्त वे लोग और-और विषयों का भी ध्यान रखते थे। दोधक-वृत्त का लक्षण तीन भगण और दो गुरु हैं। इस नियम का प्रतिपालन करते हुए वे तीन ही तीन अक्षर वाले शब्द-प्रयोग करते थे, जिससे छन्द की शोभा विशेष बढ़ जाती थी। तोटक में वे रूखे अक्षर वाले ही शब्द रखते थे; क्योंकि ऐसे अक्षर वाले शब्दों से संगठित हुआ तोटक, ताल की द्रुतगति के समान, मन को सविशेष आनन्द प्रदान करता है। हिन्दी के कवियों को भी इन बातों का विचार करना चाहिए।

दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिये कि यदि वे लिख सकते हैं, तो इनके अतिरिक्त और-और छन्द भी लिखा करें। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिये जायें। हमारा अभिप्राय यह है कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इनके साथ-साथ संस्कृत-काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तों में से दो-चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी प्रचार हिन्दी में किया जाय। इन वृत्तों में द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्त-तिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार हिन्दी में होने से हिन्दी-काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। किसी-किसी ने इन वृत्तों का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया है। यह सूचना उन्हीं लोगों के लिए है जो सब प्रकार के छन्द लिखने में समर्थ हैं, जो घनाक्षरी और दोहे अथवा चौपाई की सीमा उल्लङ्घन करने में असमर्थ हैं, उनके लिए नहीं।

आजकल की बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए।

कुछ-कुछ कवियों को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है, उसे ही वे अच्छा लिख सकते हैं। उनको दूसरे प्रकार का छन्द लिखने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। यदि कविता सरस और मनोहारिणी है, तो चाहे वह एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द में क्यों न हो उससे आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और बिहारीलाल ने दोहा लिखकर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है। प्राचीन कवियों को भी किसी-किसी वृत्त से समधिक स्नेह था। वे अपने आदृत वृत्त ही को अधिक काम में लाते थे और उनमें उनकी कविता खुलती भी अधिक थी। भारवि का वंशस्थ, रत्नाकार की वसन्त-तिलका, भवभूति और जगन्नाथराय की शिखरिणी, कालिदास की मन्दाक्रान्ता और राजशेखर का शार्दूलविक्रीड़त इस विषय में प्रमाण हैं।

पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखे जायँ। संस्कृत ही हिन्दी की माता है। संस्कृत का सारा कविता साहित्य इस तुकबन्दी बखेड़े से बहिर्गत-सा है। अतएव इस विषय में यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें तो सफलता की पूरी-पूरी आशा है। अनुप्रास युक्त पादान्त सुनते-सुनते हमारे कान उस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गये हैं। इसलिए अनुप्रास-हीन रचना अच्छी नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लगती। बिना तुक-वाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नहीं, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय, या उससे कोई अपरिमेय हानि पहुँचे, कविता का अच्छा बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूंढ़ने का प्रयास उठाने में समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है, इससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुगमता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त अनुप्रास-हीन छन्द हिन्दी में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में प्रयोग किये गये शिखरिणी, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं, जिनमें अनुप्रास का न होना काव्य-रसिकों को बहुत ही कम खटकेगा। पहले-पहल इन्हीं वृत्तों का प्रयोग होना चाहिये।

किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रम-भंग होता देख प्रचीनता के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नई चाल के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टाएँ और दोषोद्भावनाएँ करने लगते हैं, यह स्वाभाविक बात है। परन्तु यदि इस प्रकार की टीकाओं से लोग डरते, तो संसार से नवीनता का लोप हो जाता। हमारा यह मतलब नहीं कि पादान्त में अनुप्रास वाले छन्द लिखे ही न जाया करें। हमारा कथन इतना ही है कि इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रासहीन छन्द भी लिखें जायँ, बस।

भाषा

कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंङ्गम कर सके। पद्य पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है और पढ़ने में जी लगता है। परन्तु जिस काव्य का भावार्थ कठिनता से समझ में आता है, उसके अवलोकन में जो नहीं लगता और बराबर अर्थ का विचार करते-करते उससे विरक्ति हो जाती है। जो कुछ लिखा जाता है, वह इसी अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृद्गत भाव दूसरे समक्ष जायँ। यदि इस उद्देश्य की ही सफलता न हुई, तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। अतएव क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार से वांछनीय है। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकार हैं, परम विद्वान होकर भी उन्होंने सरलता ही को विशेष मान दिया है, इसलिए उनके काव्यों का इतना आदर है। जो काव्य सर्व-साधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकमान्य होता है। कवियों को इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

कविता लिखने में व्याकरण के नियमों को अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं। व्याकरण का विचार न करना कवि को तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है। कोई-कोई कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृक्पात तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। व्रजभाषा की कविता में कविजन मनमानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं। जहां तक सम्भव हो, शब्दों का मूल रूप न बिगड़ना चाहिए।

मुहाविरे का भी विचार रखना चाहिए। बेमुहाविरा-भाषा अच्छी नहीं लगती। "क्रोध क्षमा कीजिए" इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुंचाते हैं। मुहाविरा भी भाषा का प्राण है; उसे जिसने नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

विषय के अनुकूल शब्द स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आँच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है। किसी-किसी स्थल-विशेष पर रूक्षाक्षर वाले शब्द अच्छे लगते हैं, परन्तु और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। शब्द चुनने में अक्षर-मैत्री का विशेष विचार रखना चाहिये। अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई-कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अन्तःकरण को द्रवीभूत कर देता है। "टूटत उड्डु बैठे तरु जाई" इत्यादि वाक्य लिखना हिन्दी की कविता को कलङ्कित करना है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शब्दों को यथा-स्थान रखना चाहिये। शब्द-स्थापना ठीक न होने से कविता की दुर्दशा होती है और अर्थांश में जो क्लिष्टता आ जाती है, उसके उदाहरण 'हिन्दी-कालिदास की समालोचना' में दिये जा चुके हैं।

गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिये। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिससे गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य-समाज की जो भाषा हो उसी में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए। गद्य का प्रचार हिन्दी में थोड़े दिनों से हुआ है। पहले गद्य प्राय: न था; हमारा साहित्य केवल पद्यमय था। गद्य-साहित्य की उत्पत्ति के पहले गद्य में व्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था। अब कुछ अन्तर होने लगा है। पद्य की इस समय उन्नति हो रही है। अतएव अब यह सम्भव नहीं कि गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत कर लेता है। यह बात भाषा के सम्बन्ध में भी तद्वत पायी जाती है। पचास वर्ष पहले के कवियों की भाषा इस समय के कवियों की भाषा से मिलाकर देखिए। देखने से तत्काल विदित हो जायेगा कि आधुनिक कवियों पर बोल-चाल की हिन्दी भाषा ने अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है: उनकी लिखी व्रजभाषा की कविता में बोल-चाल (खड़ी बोली) के जितने शब्द और मुहाविरे मिलेंगे उतने ५० वर्ष पहले कवियों की कविता में कदापि न मिलेंगे। यह निश्चित है कि किसी समय बोल-चाल की हिन्दी-भाषा, व्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें—बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। जो लोग हिन्दी बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की सेवा करते हैं, उनके पद में व्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिनों तक नहीं रह सकता।

अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता नहीं। कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए। ऐसा न होने से अर्थ-सौरस्य नहीं आ सकता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विलाप-वर्णन करने में कवि से मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयं विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयं अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयं उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। जब कवि की आत्मा का वर्ण्य विषयों से इस प्रकार निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता पढ़कर पढ़नेवालों के हृदय पर तद्वत् भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। कविता करने में, हमारी समझ में. अलङ्कारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। विषय-वर्णन के झोंके में जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिए। बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृत भाव से जो कुछ आ जाय उसे ही पद्य-बद्ध कर देना अधिक सरल और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीत अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए कि पद्य पढ़ते ही पढ़नेवाले उसे तत्क्षण हृदयङ्गम कर सकें, क्लिष्ट कल्पना अथवा सोच-विचार करने की आवश्यक न पड़े।

बहुत-से शब्द ऐसे हैं जो सामान्य रीति से सब एक ही अर्थ के व्यञ्जक हैं, परन्तु विशेष ध्यानपूर्वक देखने अथवा धातु के अर्थ का विचार करने से पृथक् पृथक् शब्दों में पृथक्-पृथक् शक्तियों का गर्भित रहना प्रकट होता है। 'तन्वी' शब्द का सामान्य अर्थ स्थल विशेष में स्त्री होता है। परन्तु 'तनु' शब्द का अर्थ कृश होने के कारण 'तन्वी' का विशेष अर्थ दुर्बल है। यदि कहें कि "यह 'तन्वी' अपने पति के साथ सुख से अपने घर में रहती है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक नहीं हो सकता जो अर्थ 'वामा' इत्यादि शब्दों का होता है। परन्तु यदि कहें कि "तन्वी अपने प्रियतम का वियोग बड़े धैर्य से सहन कर रही है" तो यहाँ 'तन्वी' शब्द की गर्भित शक्ति से वियोग उद्योत अर्थ को सहायता पहुँचती है। अतः ऐसे स्थल पर इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रशस्त है। अर्थ-सौरस्य के लिए, जहाँ तक सम्भव हो, ऐसे ही शक्तिमान् शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

घनाक्षरी और सवैया आदि लिखने वाले कुछ कवियों की कविता में कभी-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कभी अनेक निरर्थक शब्द आ जाते हैं। कभी-कभी शब्दों के ऐसे विकृत रूप प्रयुक्त हो जाते हैं कि उनका अर्थ ही समझ में नहीं आता। कभी-कभी पादान्त में समान अक्षर लाने ही के लिए निरर्थक अथवा अपभ्रंश शब्द लाये जाते हैं। ब्रजभाषा की कविता, अथवा घनाक्षरी या सवैया के हम प्रतिकूल नहीं, परन्तु हमारा मत है कि अर्थ के सौरस्य ही की ओर कवियों का ध्यान अधिक होना चाहिए, शब्दों के आडम्बर की ओर नहीं। अर्थ-हीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिए और न शब्दों के प्रकृत रूप को विगाड़ना चाहिए। शब्दों के विगाड़ने से उनके विगड़े हुए रूप पढ़नेवालों के कान को खटकते हैं और जिस अर्थ में वे प्रयुक्त होते हैं, उस अर्थ की वे कभी-कभी पोषकता भी नहीं करते।

अश्लीलता और ग्राम्यता-गर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए और न देश, काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। कविता को सरस बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। नीरस पद्य का कभी आदर नहीं होता। जिसे पढ़नेवाले के मुख से 'वाह' न निकले, अथवा उसका मस्तक न हिलने लगे, अथवा उसकी दन्त-पंक्ति न दिखलाई देने लगे, अथवा जिस रस की कविता है, उस रस के अनुकूल वह व्यापार न करने लगे, तो वह कविता, कविता नहीं, वह तुकबन्दी मात्र है। कविता के सरल होने ही से ये उपर्युक्त बातें हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है। श्रीकण्ठ-चरित के कर्ता ने ठीक कहा है—

तैस्तैरलंकृतिशतैरवतंसितोऽपि
रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
नूनं विना घनरसप्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥

अर्थात् सैकड़ों अलङ्कारों से अलंकृत होकर भी, शब्द-शास्त्र के उच्च ासन पर अधिरूढ़ होकर भी और सब प्रकार के सौष्ठव को धारण करके भी, रस-रूपी अभिषेक के विना, कोई भी प्रबन्ध काव्याधिराज पदवी को नहीं पहुँचता।

विषय

कविता का विषय मनोरंजक और उपदेश-जनक होना चाहिए। यमुना के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किनारे-किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल; अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी; अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश, सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़ कर कोई-कोई कवि स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अन्धपरम्परा! यदि 'मेघनाद-बध' अथवा 'यशवन्तराव महाकाव्य' वे लिख नहीं सकते, तो उनको ईश्वर की निःसीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को, चुन कर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविताएँ करनी चाहिए। अभ्यास करते-करते शायद कभी, किसी समय, वे इससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ हों और दण्डी कवि के कथनानुसार[1] शायद वाग्देवी उन पर सचमुच ही प्रसन्न हो जायें। नायिका के हाव-भावादि के वर्णन का अभ्यास करनेवालों पर भी सरस्वती की कृपा हो सकती है; परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करना ही अच्छा है।

संस्कृत में सहस्रशः उत्तमोत्तम काव्य विद्यमान हैं। अतः उस भाषा में काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक कुवलयानन्द, रसतरङ्गिणी आदि साहित्य के अनेक लक्षण-ग्रन्थों का होना अनुचित नहीं। परन्तु हिन्दी भाषा में सत्काव्य का प्रायः अभाव है। इस कारण अलङ्कार और रस-विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रन्थों के बनने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'हेला' हाव का लक्षण

---

१. न विद्यते पूर्वं वासना गुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥

—काव्यादर्श

अर्थात्—पूर्ववासना और अद्भुत प्रतिभा न होने पर भी शास्त्र के अनुशीलन और यत्न के अभिनिवेश द्वारा उपासना की गयी तो सरस्वती अनुग्रह अवश्य ही करती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और उसका चित्र देखने से क्या लाभ ? अथवा दीपकालङ्कार व उसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदों को जानने का क्या उपयोग ? हिन्दी में ऐमे कितने काव्य हैं जिनमें ये भेद पाये जाते हैं ? हमारी अल्प-बुद्धि के अनुसार रस-कुसुमाकर और जसवन्तजसो (!) भूषण के समान ग्रंथों की इस समय आवश्यकता नहीं। उनके स्थान में यदि कोई कवि किसी आदर्श-पुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी-साहित्य को अलभ्य लाभ होता। कनिष्ठा और ज्येष्ठा का भेद और उनके चित्र देखे तो क्या और न देखे तो क्या ? और उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षण नामानुसार सिद्ध हो गया तो क्या और न सिद्ध हुआ तो क्या ? नायिकाओं के भी झगड़ों में उलझने से हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिए कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए। अलंकार, रस और नायिका-निरूपण बहुत हो चुका।

इस समय कवियों का एक दल कवि-समाजों और कवि-मण्डलों में बद्ध होकर समस्या-पूर्ति करने में व्यग्र हो रहा है। इन पूर्तिकारों में से कुछ को छोड़कर शेष, कविता के नाम की भी बड़ी ही अवहेलना कर रहे हैं। इनको चाहिए कि बिना योग्यता सम्पादन किये समस्यापूर्ति करने के झगड़े में न पड़ें। अच्छी समस्यापूर्ति करना असाधारण प्रतिभावान् का काम है। एक साधारण कवि अपने मनोऽनुकूल विषय पर एक ही घड़ी में चाहे ५० पद्य लिख डाले और वे सब चाहे अच्छे भी हों, परन्तु किसी समस्या के टुकड़े पर अच्छी कविता करने में वह शायद ही सफल-मनोरथ होगा। समस्यापूर्ति के लिए आसामन्य कौशल और प्रबल प्रतिभा की आवश्यकता है। इस समय प्रतिभा का पूरा-पूरा विकास बहुत कम देखा जाता है, इसलिए समस्याओं की पूर्ति भी प्रायः अच्छी नहीं होती। हमारी यह सम्मति है कि समस्या-पूर्ति के विषय को छोड़कर अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुन कर, कवि को यदि बड़ी न हो सके, तो छोटी ही छोटी स्वतन्त्र कविता करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में अभाव है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्कृत और अंग्रेजी काव्यों का अनुवाद हिन्दी में करने की ओर भी कवियों की रुचि बढ़ने लगी है; परन्तु स्वतन्त्र कविता की अपेक्षा दूसरे की कविता का अनुवाद अन्य भाषा में करना बड़ा कठिन काम है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब डालने में ही पहले कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो-चार बूँद इधर-उधर टपके वह शीशी में चला भी गया, तो इस उलट-फेर में उसके सुवास का विशेषाङ्ग अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है; क्योंकि अनुवाद के द्वारा उनके गुणों का ठीक-ठीक परिचय न होने के कारण पढ़ने वालों की दृष्टि में वह हीन हो जाता है। इसलिए किसी पुस्तक का अनुवाद करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं। परन्तु अच्छा कवि होना भी दुर्लभ है। महाकवि मङ्खक ने ठीक कहा :—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसंघेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

अर्थात्—अर्थ-रत्न और स्वर्ण-समूह से जो परिपूर्ण नहीं हैं, वे महादरिद्री लोग केवल रीति-मात्रा का अवलम्बन करके कवीश्वर की पदवी कदापि नहीं पा सकते।

काव्य के गुणों और दोषों की विवेचना संस्कृत की जिन पुस्तकों में है; उनमें कवियों के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य पर बहुत-कुछ कहा गया है। परन्तु उन सब बातों का विचार हम यहाँ पर नहीं कर सकते। केवल स्थूल बातों ही के विचार की इच्छा से हमने यह लेख आरम्भ किया था। अतएव, अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

[२]

संसार में ईश्वर या देवताओं का अवतार कई प्रकार का और कई कामों के लिए होता है। अलौकिक कार्य करने वाले प्रतिभाशाली मनुष्य ही अवतार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। स्वाभाविक कवि भी एक प्रकार के अवतार हैं। इस पर कदाचित् कोई प्रश्न करे कि अकेले कवि ही क्यों अवतार माने गये; और लेखक इस पर न बिठाये गये ? तो यह कहा जा सकता है कि लेखक का समावेश कवि में है, पर कवियों में कुछ ऐसी विशेष शक्ति होती है, जिसके कारण उनका प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ता है। अब मुख्य प्रश्न यह है कि कवि का अवतार होता ही क्यों है ? पहुँचे हुए पण्डितों का कथन है कि कवि भी "धर्मसंस्थापनार्थाय" उत्पन्न होते हैं। उनका काम केवल तुक मिलाना या 'पावस-पचासा' लिखना ही नहीं है। तुलसीदास ने कवि होकर वैष्णव धर्म की स्थापना की है; मत-मतान्तरों का भेद मिटाया है और "ज्ञान के पन्थ को कृपाण की धार बताया है। प्रायः उसी प्रकार का काम, दूसरे रूप में सूरदास, कबीर और लल्लूलाल ने किया है। हरिचश्द्र ने शूरता, स्वदेश-भक्ति और सत्य, प्रेम का धर्म चलाया है। जिन कवियों ने केवल संस्कृत भाषा ही का भाण्डार भरा है वे भी, किसी न किसी रूप में, लोगों के उपदेशक थे। हिन्दी के जितने कवि प्रसिद्ध हैं उन्होंने देश, काल, अवस्था और पात्र के अनुसार ही कविता की है। दूसरे देशों और दूसरी भाषाओं के कवियों का नाम लेने की यहाँ आवश्यकता नहीं, क्योंकि हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों ने समय-समय पर अपने कर्त्तव्य को समझा है। और उसका पालन भी किया है। राजा शिवप्रसाद-सदृश इतिहासकारों ने भी अवतार का काम किया है, यद्यपि उनके विचारों को लोग मानते नहीं। सारांश यह कि कवियों को ऐसा करना पड़ता है—वे स्वभाव ही से ऐसा करते हैं—कि संसार का कल्याण हो और इस प्रकार उनका नाम आप ही आप अमर हो जाय। भूषण के समान कवियों ने तो राजनीतिक आन्दोलन तक उपस्थित कर दिया है। "पूर्ण" कवि ने हमें यह उपदेश दिया है कि जो लोग बोलचाल की भाषा से किसी प्रकार अप्रसन्न हैं वे भी अपनी पुरानी ब्रज (कविता) की बोली को बिना तोड़े मरोड़े काम में ला सकते हैं, और यदि वे चाहें तो बोलचाल की भाषा में कविता कर सकते हैं। सारांश यह है कि कविता ही के लिए कविता करना एक तमाशा है। हिन्दी में कविता-सम्बन्धी इस प्रकार के लेख पढ़कर बाहर के लोग यह अनुमान कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकते हैं कि कदाचित् हिन्दी के कवि अपना कर्त्तव्य नहीं जानते, नहीं तो उनके लिए ऐसा लेख न लिखा जाता। यदि कोई मराठी या बँगला के समाचार-पत्र या मासिक-पत्र पढ़े, तो उसे उनमें ऐसे लेख न मिलेंगे। ऐसे लेख उन भाषाओं में कम से कम चालीस वर्ष पहले निकल चुके हैं। और उन लेखों के अनुसार उन भाषाओं की कविता इतने समय में इतनी ऊँची हो गई है कि समालोचकों के लिए जन्म भर विचार करने की सामग्री तैयार है। भाषा या साहित्य की जब जैसी अवस्था होती है, तब उसमें उसी प्रकार के लेख निकलते हैं। हम यहाँ पर इस विषय का एक उदाहरण देते हैं। एक बार 'छत्तीसगढ़-मित्र' में हिन्दी-व्याकरण के विषय में कुछ लेख निकले थे। उस पर एक महाराष्ट्र सज्जन ने बम्बई से (संपादक से) पूछा कि क्या हिन्दी में व्याकरण नहीं है? इस पर सुनने में आया कि सम्पादक ने उनको यह उत्तर दिया कि और-और भाषाओं के समान हिन्दी में कोई व्याकरण है। परन्तु इस विषय का निरूपण विदेशियों ने किया है। हिन्दुस्तानी लोग न उसे खोज सके हैं और न खोज हो जाने पर भी उसकी ओर ध्यान देते हैं।

कवि की कल्पना-शक्ति तीव्र होती है। इस कल्पना-शक्ति के द्वारा यह कठिन बातों को ऐसे अनोखे ढङ्ग से सबके सामने रखता है कि वे सहज ही समझ में आ जाती हैं। इसी शक्ति से वह अनजाने हुए पदार्थों या दृश्यों का चित्र इतना मनोहर खींचता है कि पढ़ने या सुनने वाले एकाग्रचित्त हो जाते हैं और उस बात पर प्रेमपूर्वक विचार करते हैं। फिर कवि अपने अवलोकन और अपनी कल्पना से ऐसी शिक्षा देते हैं कि वह न तो आज्ञा का रूप धारण करती है, और न अपना स्वाभाविक रूखापन ही प्रकट करती है, किन्तु भीतर ही भीतर मन को उकसा देती है। ताजमहल का वर्णन करते समय वह इस बात पर ध्यान न देगा कि यह किस सन् में बना था, इसकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है, या इसका पत्थर कहाँ से आया है? इमारत को देखकर उसका मन कदाचित् उसके भीतर भी ऊँचा बढ़ जायेगा और वह उस समय की कल्पना करने लगेगा जब बादशाह की बेगम मरते समय, रौजे की वसीयत कर रही थी। उसके मन में पुराने और नये समय के मिलान का भी चित्र

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायगा और वह समय के फेर की घटनाओं को सोचने लगेगा। मनोहर वर्णन और शिक्षा के साथ-साथ कवि अपने शब्द और वाक्य भी ऐसे मनोहर बनाता है कि पढ़नेवाले के आनन्द की सीमा नहीं रहती। कविता लिखते समय जो-जो भाव कवि के हृदय में उदित होते हैं, वही भाव पढ़नेवाले के हृदय में उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए पढ़नेवाला सहृदय होना चाहिए, नहीं तो भैंस के आगे बीन बजने लगेगी। यदि स्वतः कवि में सहृदयता न हो तो फिर उसका श्रम ही वृथा है। मनोविज्ञानी लोग कदाचित् किसी समय हमको यह बता सकेंगे कि मनोविकार प्रकट करने के लिए छन्द का ही उपयोग क्यों होता है? गद्य में भी कोई-कोई लेखक—विशेषकर उपन्यास लेखक—ऐसा मनोहर वर्णन करते हैं और ऐसे भाव प्रकट करते हैं कि उनका गद्य पद्य हो जाता है। जो हो, अभी तो कवि लोग ही विशेषकर यह काम करते हैं और उसके लिए छन्द काम में लाते हैं।

आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाय। पढ़नेवालों के मन में नई-नई उपमाओं को, नये-नये शब्दों को और नये-नये विचारों को समझने की योग्यता उत्पन्न करना कवि ही का कर्त्तव्य है। जब लोगों का झुकाव इस ओर होने लगे तब, समय-समय पर कल्पित अथवा सत्य आख्यानों के द्वारा सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विषयों की मनोहर शिक्षा दे। जब जो विषय उसके अवलोकन में आवे, तब उसी पर अपनी स्वाभाविक शक्ति से कविता लिखकर लोगों को परोक्ष रूप से सचेत करे। कविता के प्रभाव का एक छोटा-सा उदाहरण सुनिए। पद्माकर कवि के घराने के लोगों में विवाह के समय कवित्त पढ़ने की चाल है। उनकी जाति के लोग कहते हैं कि वह चाल पद्माकर के समय से चली है और वह अब तक चली आती है। क्या यह बात आजकल के कवियों में नहीं हो सकती? जान पड़ता है कि "अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहिं प्रकाश"—जिसने यह दोहा लिखा है उसको बड़ी दूर की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूझी। बोल-चाल की भाषा में आज तक कोई कविता ऐसी नहीं बनी, जिसका प्रचार "चन्द्रकान्ता"[१] के समान साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी हुआ हो। सदोष होने पर भी इस उपन्यास के कारण पुरुषों और स्त्रियों में उपन्यास पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार जब बोलचाल की भाषा की कविता को, या आजकल के और दूसरे पद्यों को साधारण लोग भी पढ़ने लगें; तब समझना चाहिए कि कविता और कवि लोकप्रिय हैं। आजकल तो संस्कृत-भरी कविता का रचा जाना और भी अधिक हानिकारक है।

सारांश यह कि यदि आजकल की कविता में शास्त्रोक्त गुणों को छोड़कर नीचे लिखे हुए गुण हों तो सम्भव है कि वह लोकप्रिय होगी—

(१) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो।

(२) उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण रहें।

(३) कल्पना सूक्ष्म और उपमादिक अलङ्कार गूढ़ न हों।

(४) भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

(५) छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।

●●

---

१. यह आसन अब 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' को मिल गया है। १६१८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३ | ईर्ष्या

रामचन्द्र शुक्ल

जैसे दूसरे के दुःख को देख दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दुःख होता है जिसे ईर्ष्या कहते हैं। ईर्ष्या की उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है, इससे इनका प्रादुर्भाव बच्चों में कुछ देर में देखा जाता है और पशुओं में तो शायद होता ही न हो। ईर्ष्या एक संकर भाव है जिसकी संप्राप्ति आलस्य, अभिमान और नैराश्य के योग से होती है। जब दो बच्चे किसी खिलौने के लिए झगड़ते हैं, तब कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि एक ऐसे खिलौने को लेकर फोड़ देता है जिससे वह किसी के काम में नहीं आता। इससे अनुमान हो सकता है कि उस लड़के के मन में यही रहता है कि चाहे वह खिलौना मुझे मिले या न मिले, दूसरे के काम में न आए, अर्थात् उसकी स्थिति मुझसे अच्छी न रहे। ईर्ष्या पहले-पहल इसी रूप में व्यक्त होती है।

ईर्ष्या प्राप्ति की उत्तेजित इच्छा नहीं है। यदि एक के पास कोई वस्तु है और दूसरे के पास नहीं है तो वह दूसरा व्यक्ति, इस बात के लिए तीन प्रकार के दुःख प्रकट कर सकता है—

१ क्या कहें हमारे पास भी वह वस्तु होती।

२. हाय, वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती तो अच्छा था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. वह वस्तु किसी प्रकार उसके हाथ से निकल जाती; चाहे जहाँ जाती।

इन तीनों वाक्यों को ध्यानपूर्वक देखने से जान पड़ेगा कि इनमें दूसरे व्यक्ति की ओर जो लक्ष्य है, उसे क्रमशः विशेषत्व प्राप्त होता गया है और वस्तु की ओर जो लक्ष्य है, वह कम होता गया है। पहले वाक्य से जो भाव झलकता है वह ईर्ष्या नहीं है, साधारण स्पर्द्धा अर्थात् लाभ की उत्तेजित इच्छा का एक अच्छा रूप है। उसमें वस्तु की ओर लक्ष्य है, व्यक्ति की ओर नहीं। ईर्ष्या व्यक्तिगत होती है और स्पर्द्धा वस्तुगत। दूसरे वाक्य में ईर्ष्या कुछ, और तीसरे में पूरा आभास है। इन दोनों में से एक (दूसरे) में दूसरे से वञ्चित न रख सकने का दुःख गौण और दूसरे (तीसरे) में प्रधान या एकान्त है।

स्पर्द्धा में किसी सुख, ऐश्वर्य, गुण या मान से किसी व्यक्ति-विशेष को सम्पन्न देख अपनी त्रुटि पर दुःख होता है, फिर प्राप्ति की एक प्रकार की उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न होती है, या यदि इच्छा पहले से होती है तो उस इच्छा को उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार की वेगपूर्ण इच्छा या इच्छा की उत्तेजना अन्तः करण की उन प्रेरणाओं में से है जो मनुष्य को अपने उन्नति-साधन में तत्पर करती है। इसे कोई संसार को सच्चा समझने वाला बुरा नहीं कह सकता। यह उत्तेजना ऐश्वर्य, गुण या मान के किसी चित्ताकर्षक रूप या प्रभाव के साक्षात्कार में उत्पन्न होती है और कभी-कभी उस ऐश्वर्य, गुण या मान को धारण करनेवाले की पूर्वस्थिति के परिज्ञान से बहुत बढ़ जाती है। किसी अपने पड़ोसी या मित्र की विद्या का चमत्कार या आदर देख विद्या प्राप्ति की इच्छा उत्तेजित होती है और यह जानकर कि पहले वह एक बहुत साधारण बुद्धि या वित्त का मनुष्य था, यह उत्तेजित आशा-प्रेरित होकर और बढ़ जाती है। प्राप्ति की इस उत्तेजित इच्छा के लिए सम्पन्न व्यक्ति ऐसा मूर्तिमान और प्रत्यक्ष आधार हो जाता है जिससे अपनी उन्नति या सम्पन्नता की भी आशा बँधती है और कार्यक्रम की शिक्षा मिलती है। किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छावाले को, किसी ऐसे व्यक्ति को देख, जिसने अपने पुरुषार्थ से वह वस्तु प्राप्त की हो, कभी-कभी बड़ा सहारा हो जाता है और वह सोचता है कि जब उस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनुष्य ने उस वस्तु को प्राप्त कर लिया तब क्या मैं भी नहीं कर सकता ? ऐसे सम्पन्न व्यक्ति की ओर जो इच्छुक या स्पर्द्धावान् का वार-वार ध्यान जाता है वह उसकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी स्थिति में परिवर्तन करने के लिए। स्पर्द्धा में अपनी कमी या त्रुटि पर दुःख होता है, दूसरे की सम्पन्नता पर नहीं। स्पर्द्धा में दुःख का विषय होता है "मैंने उन्नति क्यों नहीं की ?" और ईर्ष्या में दुःख का विषय होता है "उसने उन्नति क्यों की ?" स्पर्द्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्ष्या कमी।

ऊपर के विवरण से यह बात झलक गई होगी कि ईर्ष्या एक अनावश्यक विकार है, इससे उसकी गणना मूल मनोविकारों में नहीं हो सकती। यह यथार्थ में कई भावों के विचित्र मिश्रण से संघटित एक विष है। जब किसी विषय से अपनी स्थिति को रक्षित रख सकने या समुन्नत कर सकने के निश्चय में अयोग्यता या आलस्य आदि के कारण कुछ कसर रहती है तभी इस इच्छा का उदय होता है कि किसी व्यक्ति-विशेष की स्थिति उस विषय में हमारे तुल्य या हमसे बढ़कर न होने पाए। यही इच्छा बढ़कर द्वेष में परिवर्तित हो जाती है और तब दूसरे व्यक्ति का अनिष्ट, न केवल उसी विषय में, बल्कि प्रत्येक विषय में वांछित हो जाता है। वैर और द्वेष में अन्तर यह है कि वैर अपनी किसी वास्तविक हानि के प्रतिकार में होता है पर द्वेष अपनी किसी हानि के कारण या लाभ की आशा से नहीं किया जाता।

यह बात ध्यान देने की है कि ईर्ष्या व्यक्ति-विशेष से होती है। यह नहीं होता कि जिस किसी को ऐश्वर्य, गुण या मान से सम्पन्न देखा, उसी से ईर्ष्या हो गई। ईर्ष्या उन्हीं से होती है जिनके विषय में यह धारणा होती है कि लोगों की दृष्टि हमारे साथ-साथ उन पर भी अवश्य पड़ेगी, या पड़ती होगी। अपने से दूरस्थ होने के कारण अपने साथ-साथ जिन पर लोगों का ध्यान जाने का निश्चय नहीं होता उनके प्रति ईर्ष्या नहीं उत्पन्न होती। काशी में रहने-वाले किसी धनी को अमेरिका के किसी धनी की बात सुनकरईर्ष्या नहीं होगी। हिन्दी के किसी कवि को इटली के किसी कवि का महत्व सुनकर ईर्ष्या नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होगी। सम्बन्धियों, बाल-सखाओं, सहपाठियों और पड़ोसियों के बीच ईर्ष्या का विकास अधिक देखा जाता है। लड़कपन से जो आदमी एक साथ उठते-बैठते देख गए हैं उन्हीं में से कोई किसी अच्छे पद पर पहुँच गया तो वह इस उद्योग में देखा जाता है कि दूसरे किसी अच्छे पद पर न पहुँचने पाएँ। प्रायः अपनी उन्नति के गुप्त बाधकों का पता लगते-लगाते लोग अपने किसी बड़े पुराने मित्र तक पहुँच जाते हैं। जिस समय संसर्ग-सूत्र में बाँधकर हम औरों को अपने साथ एक पंक्ति में खड़ा करते हैं उस समय सहानुभूति, सहायता आदि की सम्भावना प्रतिष्ठित होने के साथ ही साथ ईर्ष्या और द्वेष की नींव भी पड़ जाती है। अपने किसी विधान से हम भलाई ही भलाई की सम्भावना का सूत्रपात करें और इस प्रकार भविष्य के अनिश्चय में बाधा डालें, वह कभी हो ही नहीं सकता। भविष्य की अनिश्चयात्मकता अटल और अजेय है अपनी लाख विद्या-बुद्धि से भी तुम उसे बिलकुल हटा नहीं सकते।

अब ध्यान देने की बात यह निकली कि ईर्ष्या के संचार के लिए ईर्ष्या करनेवाले और ईर्ष्या के पात्र के अतिरिक्त स्थिति पर ध्यान देनेवाले समाज की भी आवश्यकता है। इसी समाज की धारणा पर प्रभाव डालने के लिए ही ईर्ष्या की जाती है; ऐश्वर्य, गुण या मान का गुप्त रूप से, बिना किसी समुदाय को विदित कराए, सुख यह सन्तोष भोगने के लिए नहीं। ऐश्वर्य या गुण में हम चाहे किसी व्यक्ति से वस्तुतः बढ़कर या उसके तुल्य न हों, पर यदि समाज की यह धारणा है कि हम उससे बढ़कर या उसके तुल्य हैं तो हम सन्तुष्ट रहेंगे, ईर्ष्या का घोर कष्ट न उठाने जायेंगे। कैसी अनोखी बात है कि वस्तु-प्राप्ति से वंचित रहकर भी हम समाज की धारणामात्र से सन्तुष्ट रहते हैं।

ईर्ष्या सामाजिक जीवन की कृत्रिमता से उत्पन्न एक विष है। इसके प्रभाव से हम दूसरे की बढ़ती से अपनी कोई वास्तविक हानि न देखकर भी व्यर्थ दुःखी होते हैं। समाज के संघर्ष से जो अवास्तविकता उत्पन्न होती है वह हम पर प्रभाव डालने में वास्तविकता से कम नहीं। वह हमें सुखी कर सकती है, दुःखी भी। फारसी मसल—सर्गे अम्बोह जशने दारद। हम किसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कष्ट में हैं इसी बीच में कोई दूसरा व्यक्ति हमसे अपना भी वही कष्ट वर्णन करने लगता है तो हमारे मुँह पर कुछ हँसी आ जाती है और हम कुछ आनन्दित होकर कहते हैं "भाई! हम भी तो इसी बला में गिरफ्तार हैं।" यदि दस-पाँच आदमी वहीं कष्ट बतलाने वाले मिलें तो हँसी कुछ बढ़ भी जाती है। एक बार किसी ने अपने सम्बन्धी के मरने पर एक विद्वान् से पूछा कि "हम धैर्य कैसे धारण करें?" उसने कहा कि "थोड़ी देर के लिए सोचो कि इसी संसार में लाखों अनाथ इधर-उधर ठोकर खा रहे हैं, लाखों बच्चे बिना माँ-बाप के रो रहे हैं, लाखों विधवाएँ आँसू बहा रही हैं।" यदि हमें कोई कष्ट है तो क्या है तो क्या दूसरों को भी उसी कष्ट में देखकर थोड़ी देर के लिए हमारा वह कष्ट सचमुच कुछ घट जाता है? यदि नहीं घटता है तो यह हँसी कैसी, यह धैर्य कैसा? यह हँसी केवल स्थिति के मिलान पर निर्भर है, जिससे अपनी स्थिति के विशेषत्व का परिहार होता है। यह लोक-संचय का एक गुण है कि कभी-कभी स्थिति के बने रहने पर भी उसके विशेषत्व के परिहार से तत्सम्बन्धी भावना में अन्तर पड़ जाता है। पर यह अन्तर ऐसा ही ऐसा है जैसा रोते-रोते सो जाना या पीड़ा से चिल्लाते समय क्लोरोफार्म सूँघ लेना।

समाज में पहले ही मनुष्य देखने लगता है कि उसकी स्थिति दोहरी हो गई है। वह देखता है कि 'मैं यह हूँ' : और 'मैं यह समझा जाता हूँ'। इस दोहरेपन से उसका सुख भी दोहरा हो जाता है और दुःख भी। 'मैं बड़ा हूँ' इस निश्चय के साथ एक यह निश्चय जुड़ जाने से कि 'मैं बड़ा समझा जाता हूँ' मनुष्य के आनन्द या सुख के अनुभव में वृद्धि होती है। इसी प्रकार 'मैं क्षुद्र हूँ' इस धारणा के साथ 'मैं क्षुद्र समझा जाता हूँ' इस धारणा के योग से दुःख के अनुभव की वृद्धि होती है। इस प्रकार स्थिति के एकान्त और सामाजिक दो विभाग हो जाने से कोई तो दोनों विभागों पर दृष्टि रख सकते हैं और कोई एक ही पर। शक्तिशाली और प्रतिभासम्पन्न मनुष्य पहले यह प्रयत्न करते हैं कि 'हम ऐसे हों।' फिर वैसे हो जाने पर यदि आवश्यक हुआ तो वे यह प्रयत्न करते हैं कि 'हम ऐसे समझे जायें।' इन दोनों के प्रयत्न जुदे-जुदे हैं। संसार में शक्तिसम्पन्न सब नहीं होते, इससे बहुत से लोग स्थिति के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहले विभाग के लिए जिन प्रयत्नों की आवश्यकता है उनमें अपने को असमर्थ देख दूसरे ही विभाग से किसी प्रकार अपना सन्तोष करना चाहते हैं और उसी पर दृष्टि रखकर प्रयत्न करते हैं। ईर्ष्या ऐसे लोगों के हृदय में वहुत जगह पाती है और उसके प्रयत्नों में सहायक भी होती है। भाव-प्रवर्तन आदि के वल से जिस समुदाय के प्राणी परस्पर ऐसे सन गए है कि अपने इंद्रियानुभव और भावनाओं तक को जबाव देकर दूसरों के इन्द्रियानुभव और भावनाओं द्वारा निर्वाह कर सकते हैं, उसी में ईर्ष्या का विकास हो सकता है। अतः ईर्ष्या का अनन्य अधिकार मनुष्य-जाति ही पर है। एक कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते को कुछ खाते देख उसे आप खाने की इच्छा कर सकता है, पर वह यह नहीं चाह सकता कि चाहे हम खायें या न खायें वह दूसरा कुत्ता न खाने पाए। दूसरे कुत्तों की दृष्टि में हमारी स्थिति वैसी है, इसकी चिन्ता उस कुत्ते को न होगी।

अपने विषय में दूसरों के चित्त में अच्छी धारणा उत्पन्न करने का प्रयत्न अच्छी वात है। इस प्रयत्न को जो बुरा रूप प्राप्त होता है वह असत्य के समावेश के कारण—दूसरों की धारणा की अवास्तविकता और अपनी स्थिति की सापेक्षता के कारण। जव हम अपने विषय में दूसरों की झूठी धारणा और अपनी स्थिति के सापेक्ष रूपमात्र से सन्तोष करना चाहते हैं तभी बुराइयों के लिए जगह होती है और ईर्ष्या की राह खुलती है। जैसी स्थिति हमारी नहीं है, जैसी स्थिति प्राप्त करने की योग्यता हममें नहीं है, हम चाहते हैं कि लोग हमारी वैसी स्थिति समझें। जैसी स्थिति से वास्तव में हमें कोई सुख नहीं है वैसी स्थिति किसी दूसरे के समान या दूसरे से अच्छी स्वयं समझने से नहीं, बल्कि दूसरों के द्वारा समझी जाने से ही हम संतोष करते हैं। ऐसे असत्य आरोपों के बीच यदि ईर्ष्या ऐसी असार वृत्ति का उदय हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद यह धारणा हो सकती है कि ईर्ष्या अप्राप्त वस्तु ही के लिए होती है। पंर यह बात नहीं है। हमारे पास जो वस्तु है उसे भी दूसरे के पास देखकर कभी-कभी हमें बुरा लगता है, हम दुःखी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होते हैं। किसी गरीब पड़ोसी को क्रमशः धनी होते देख आसपास में, धनी माना जानेवाला मनुष्य कभी-कभी बुरा मानने लगता है। एक ऊँची जाति का आदमी किसी नीच जाति के आदमी को अपने ही समान वस्त्र आदि पहने देख बुरा मानता और कुढ़ता है। इसका कारण यह स्थायी बुद्धि या अहंकार है कि 'हम ऊँचे हैं, वह नीचा है, हम बड़े हैं, वह छोटा है।' लोक-व्यवस्था के भीतर कुछ विशेष वर्ग के लोग, जैसे शिष्ट, विद्वान्, धर्म-चिन्तक, शासन-कार्य पर नियुक्त अधिकारी, देश-रक्षा में प्राण देने को तैयार वीर इत्यादि औरों से अधिक आदर और सम्मान के पात्र होते हैं। इनके प्रति उचित सम्मान न प्रदर्शित करना अपराध है। अन्य वर्ग के लोक-धर्मानुसार इन्हें बड़ा मानने को विवश हैं। पर इन्हें दूसरों को छोटा प्रकट करने क्या, मानने तक का अधिकार नहीं है। जहाँ इन्होंने ऐसा किया कि सम्मान का स्वत्व खोया।

न्यायाधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। समाज-कल्याण के विचार से न्यायाधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि तुम हमसे छोटे हो। जिस जाति में इस छोटाई-बड़ाई का अभिमान जगह-जगह जम कर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न-भिन्न वर्गों के बीच स्थायी ईर्ष्या स्थापित हो जाती है और संघ शक्ति का विकास बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है। यदि समाज में उन कार्यों को, जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न प्राणी जीवन-निर्वाह करते हैं, परस्पर छोटाई-बड़ाई का ढिंढोरा न पीटा जाय, बल्कि उनकी विभिन्नता ही स्वीकार की जाय, तो बहुत-सा असंतोष दूर हो जाय, राजनीति स्वत्व की आकांक्षा से स्त्रियों को पुरुषों की हद में न जाना पड़े, सब पढ़े-लिखे आदमियों को सरकारी नोकरियों के पीछे न दौड़ना पड़े। जहाँ इस छोटाई-बड़ाई का भाव बहुत प्रचार पा जाता है और जीवन-व्यवहारों में निर्दिष्ट और स्पष्ट रूपों में दिखाई पड़ता है, वहाँ लोगों की शक्तियाँ केवल कुछ विशेष-विशेष स्थलों की ओर प्रवृत्त होकर उन-उन स्थानों पर इकट्ठी होने लगती हैं और समाज के कर्त्तव्य-विभागों में विषमता आ जाती है। अर्थात् कुछ सूने पड़ जाते हैं और कुछ आवश्यकता से अधिक भर जाते हैं, जैसा कि आज कल इस देश में देखा जा रहा है। यहाँ कृषि, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य आदि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की ओर तब तक पढ़े-लिखे लोग ध्यान न देंगे जब तक कुछ पेशों और नौकरियों की शान लोगों की नज़रों में समाई रहेगी। इस प्रकार की शान प्रायः किसी शक्ति के अनुचित प्रयोग में अधिक समझी जाती है। कोई पुलिस का कर्मचारी जब अपने पद का अभिमान प्रकट करता है। तब यह कहता है कि मैं जिन बदमाश को चाहूँ पकड़कर तंग कर सकता हूँ; बल्कि यह कहता है कि 'मै जिसको चाहूँ उसको पकड़कर तंग कर सकता हूँ।'

अधिकार सम्बन्धी अभिमान अनौचित्य की सामर्थ्य का अधिक होता है। यदि अधिकार के अनुचित उपयोग की संभावना दूर कर दी जाय तो स्थान-स्थान पर अभिमान की जमी हुई मैल साफ हो जाय और समाज के कार्य-विभाग चमक जायँ। यदि समाज इस बात की पूरी चौकसी रक्खे कि पुलिस के अफसर उन्हीं लोगों को कष्ट दे सकें जो दोषी हैं, माल के अफसर उन्हीं लोगों को क्षतिग्रस्त कर सकें जो कुछ गड़बड़ करते हैं, तो उन्हें शेष लोगों पर, जो निर्दोष हैं, जिनका मामला साफ है और जिनसे हर घड़ी काम पड़ता है, अभिमान प्रकट करने का अवसर कहाँ मिलसकता है ? जब तक किसी कार्यालय में छोटे से बड़े तक सब अपना-अपना नियमित कार्य ठीक-ठीक करते है तब तक एक दूसरे पर अपनी बड़ाई प्रकट करने का अवसर नहीं आता है। पर जब कोई अपने कार्य में त्रुटि करता है तब उसका अफसर उसे दण्ड देकर अपनी बड़ाई या अधिक सामर्थ्य दिखाता है। सापेक्ष बड़ाई दूसरे को क्षतिग्रस्त करने और दूसरे को नम्र करने के सामर्थ्य का नाम है। अधिकार की सापेक्ष बड़ाई दूसरे को नम्र करने के सामर्थ्य है। इससे विदित हुआ कि यह छोटाई-बड़ाई हर समय तमाशा दिखाने के लिए नहीं है, बल्कि अवसर पड़ने पर संशोधन या शिक्षा के लिए है। किसी अवध के तअल्लुकेदार के लिए बड़ाई का यह स्वांग दिखाना आवश्यक नहीं है कि वह जब मन में आए तब कामदार टोपी सिर पर रख, हाथी पर चढ़ गरीबों को पिटवाता चले। किसी देहाती थानेदार के लिए यह जरूरी नहीं है कि सिर पर लाल पगड़ी रख गँवारों को गाली देकर हर समय अपनी बड़ाई का अनुभव करता और कराता रहे। अभिमान एक व्यक्तिगत गुण है, उसे समाज के भिन्न-भिन्न व्यवसायों के साथ जोड़ना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ठीक नहीं। समाज में स्थान-स्थान पर अभिमान के अजायबघर स्थापित होना और अच्छा नहीं। इस बात का ध्यान रखना समाज का कर्त्तव्य है कि धर्म और राजबल से प्रतिष्ठित संस्थाओं के अन्तर्गत अभिमानालय और खुशामदखाने न खुलने पाएँ।

इसी प्रकार किसी बड़े धनी या गुणी का यह हर घड़ी का एक काम न हो जाना चाहिए कि वह औरों के धन या गुण से अपने धन या गुण का मिलान किया करे और अपने से कम धनी या गुणी लोगों से अपनी श्रेष्ठता देख-दिखाकर सन्तोष किया करे। इस प्रकार सन्तोष करना वस्तु को छोड़ छाया पर सन्तोष करना है। इस प्रकार के सन्तोष का सुख मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, पर वह ऐसे ही अवसरों तक के लिए निर्दिष्ट है जब किसी त्रुटि का संशोधन हो, कठिनता का निराकरण हो या आवश्यकता की पूर्ति हो। उसे ऐसे अवसरों के अतिरिक्त और अवसरों में घसीटना बुराई है। कई आदमी किसी रास्ते के पत्थर को हटाने में लगे हैं और वह नहीं हिलता है। एक दूसरा आदमी आकर अकेले उस पत्थर को हटाकर फेंक देता है उस समय उसे अपने को बल में औरों से बढ़कर देख सन्तोष और आनन्द होगा और शेष लोग भी उसके कृत्य से प्रभावित रहने के कारण उस समय उसके इस सापेक्ष आनन्द या आनन्द-प्रदर्शन से कुढ़ेंगे नहीं, बल्कि कुतूहल-युक्त होंगे और शायद कुछ शिक्षा भी ग्रहण करेंगे। पर यदि उसे इस बड़ाई के आनन्द का चसका लग जायेगा और वह हर घड़ी इसका अनुभव करना चाहेगा, उसे प्रकट किया करेगा तो वह एक प्रकार का दुर्व्यसन हो जायगा और अहंकार के नाम से पुकारा जायगा।

जिस किसी के चित्त में इस प्रकार अहंकार घर करेगा उसमें अपने चारों ओर से घटकर धन, मान, गुण या बल देखने की स्थायी इच्छा स्थापित हो जायगी और जो वस्तु उसे प्राप्त है उसे भी दूसरों को प्राप्त करते देख उसे कुढ़न या ईर्ष्या होगी। उनके अहंकार से आहत होकर दूसरे लोग भी उसकी उन्नति न देखना चाहेंगे और उससे एक प्रकार की उचित ईर्ष्या रक्खेंगे, इस प्रकार ईर्ष्या की अच्छी खेती होगी। सारांश यह कि अभिमान हर घड़ी बड़ाई की भावना भोगने का दुर्व्यसन है और ईर्ष्या उसकी सहगामिनी है। इस बड़ाई

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के अनुभव को भोगने का जिसे दुर्व्यसन हो जाता है उसके लिए उन्नति का द्वार बन्द-सा है। उसे हर घड़ी अपनी बड़ाई का अनुभव करते रहने का नशा हो जाता है, इससे उसको चाट के लिए वह सदा अपने से घटकर लोगों की ओर दृष्टि डाला करता है और अपने से बड़े लोगों की ओर नशा मिट्टी होने के भय से देखने का साहस नहीं करता। ऐसी अवस्था में वह उन्नति की उत्तेजना और शिक्षा से वंचित रहता है। इसी से अभिमान को मद भी कहते हैं। दुर्व्यसन किसी प्रकार का हो, मंद है।

यह तो कहा ही जा चुका है कि ईर्ष्या दूसरे की असंपन्नता की इच्छा की अपूर्ति से उत्पन्न होती है। ऐसी इच्छा यदि किसी हानि के बदले में अथवा हानि की आशंका से हो तो वह शुद्ध ईर्ष्या नहीं है। किसी दूसरे से हानि उठाकर उसकी हानि की आकांक्षा करना, केवल बुराई का बुराई से जवाब देना है और क्रोध या बैर के अन्तर्गत है। इसी प्रकार यदि किसी की संपन्नता में हमें क्लेश या हानि की आशंका है और हम उसकी ऐसी सम्पन्नता की अनिच्छा या उसका दुःख करते हैं तो केवल अपना बचाव करते हैं—आजकल के शब्दों में अपनी रक्षा के स्वत्व का उपयोग करते हैं। यदि हम किसी अन्यायी को कोई अधिकार पाते देख कुढ़ते हैं तो केवल अपने या समाज के बचाव की फिक्र करते हैं, ईर्ष्या नहीं करते। यदि हमें निश्चय है कि हमारा कोई मित्र इतना घमंडी है कि यदि उसे किसी वस्तु की प्राप्ति होगी तो वह हमसे ऐंठ दिखाकर हमारा अपमान करेगा, तो हमारा यह चाहना कि वह मित्र वह वस्तु न पाए अथवा इस बात पर दुःखी होना कि वह मित्र वह वस्तु पा गया, ईर्ष्या नहीं, बचाव की चिन्ता है। इसी से अभिमानियों से ईर्ष्या करने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। लोग इस अधिकार का उपयोग भी खूब करते हैं। क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, क्या व्यवहार में, मानव-जीवन के सब विभागों में इस अधिकार का उपयोग होते देखा जाता है। ऐसा देखा गया है कि अच्छे लेखकों के गुणों पर उनके अभिमान से आहत लोगों के प्रयत्न या उदासीनता से बहुत दिनों तक परदा पड़ा रहा है और वे जिन्दगी-भर भवभूति के इस वाक्य पर सन्तोष किए बैठे रहे हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

अभिमान-ग्रस्त के गुण को लोग देखकर भी नहीं देखते हैं। अभिमानी स्वयं अन्धा होकर दूसरों की आँखें भी फोड़ता है। न उसे दूसरों के उत्कृष्ट गुण की ओर ताकने का साहस होता है और न दूसरों को उसके गुण को स्वीकार करने की उत्कंठा होती है। अभिमान दोनों ओर ज्ञान का निषेध करता है। अतः जिस प्रकार अभिमान न करना श्रेष्ठ गुण है, उसी प्रकार दूसरे के अभिमान को देख क्षुब्ध न होना भी श्रेष्ठ गुण है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि ईर्ष्या दूसरे की प्राप्ति या प्राप्ति की सम्भावना में उत्पन्न दुःख है, चाहे वह वस्तु हमें प्राप्त हो या न हो। अतः ईर्ष्या धारण करने वाले के दो रूप होते हैं, एक असंपन्न और दूसरा सम्पन्न। असम्पन्न रूप वह है जिसमें ईर्ष्या करनेवाला दूसरे को ऐसी वस्तु प्राप्त करते देख दुःखी होता है जो उसके पास नहीं है। ऐसे दुःख में आलस्य या असामर्थ्य से उत्पन्न नैराश्य, दूसरे की प्राप्ति से अपनी सापेक्षिक छोटाई का बोध, दूसरे की असंपन्नता की इच्छा और अन्त में इस इच्छा की पूर्ति में बाधक उस दूसरे व्यक्ति पर एक प्रकार का मीठा क्रोध, इतने भावों का मेल रहता है। किसी वस्तु को हम नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरा उसी को प्राप्त करता है। हम समझते हैं कि लोगों की दृष्टि जब हमारी स्थिति पर पड़ती होगी, तब उस की स्थिति पर भी पड़ती होगी। इससे लोगों की दृष्टि में हमारी स्थिति अवश्य कुछ न्यून जँचती होगी। अतः स्थिति की समानता के लिए हम चाहते हैं कि वह दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को न प्राप्त करता या खो देता। पर वह दूसरा व्यक्ति जीता-जागता यत्नवान् प्राणी होने के कारण उसे प्राप्त करता या रक्षित रखता है। इससे हमारी इच्छापूर्ति बाधा होती है और हम बाधक के ऊपर मन-ही-मन चिड़चिड़ाते हैं।

ईर्ष्या में क्रोध का भाव किस प्रकार मिलता रहता है, इसका प्रमाण बराबर मिलता रहता है। दूसरे व्यक्ति को किसी वस्तु से संपन्न देख यदि कोई उससे ईर्ष्या करता है तो केवल यही नहीं होता कि वह उसी वस्तु को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उससे अलग करके या अलग करने का प्रयत्न करके संतोष कर ले, बल्कि वह उस सम्पन्न व्यक्ति को अवसर पाने पर, बिना किसी अन्य कारण के, कुवाक्य भी कह बैठता है। जी दुखाने का प्रयत्न बिना किसी प्रकार के क्रोध के नहीं हो सकता। इसी कारण जैसे क्रोध से जलना कहा जाता है वैसे ही ईर्ष्या से जलना भी कहा जाता है। साहित्य के शब्दों में, क्रोध ईर्ष्या के संचारों के रूप में समय-समय पर व्यक्त होता हुआ देखा जाता है।

अब यहाँ पर लगे हाथों यह भी देख लेना चाहिए कि यह क्रोध है किस प्रकार का। यह क्रोध बिलकुल जड़ क्रोध है। जिसके प्रति ऐसा क्रोध किया जाता है उसके मानसिक उद्देश्य की ओर नहीं ध्यान दिया जाता। यदि हम असावधानी से दौड़ते समय किसी सोए आदमी से टकराकर उस पर बिगड़ने लगें, या रास्ते की ठोकर खाकर उसे चूर-चूर करने पर उतारू हों, तो हमारा यह क्रोध जड़ क्रोध होगा, क्योंकि हमने यह विचार नहीं किया कि क्या वह आदमी हमें ठोकर खिलाने के लिए ही सोया था, या वह पत्थर हमारे पैर में लगने के ही नामाकूल इरादे से वहाँ आ पड़ा था। यदि हमारे पास कोई वस्तु नहीं है और दूसरे उसे प्राप्त करता है तो वह इस उद्देश्य से नहीं प्राप्त करता कि उससे हम अपनी हेठी समझकर दुःखी हों और हमारी इच्छापूर्ति में बाधा पड़े। यह दूसरी बात है कि पीछे से यह मालूम करके भी उसकी प्राप्ति से हम अपनी हेठी समझ-समझ कर बेचैन हो रहे हैं, वह हमारे दुःख में सहानुभूति न करे और उस वस्तु के लिए आनन्द से कान में तेल डाले बैठा रहे। प्रायः तो ऐसा होता है कि किसी वस्तु को प्राप्त करनेवाले मनुष्य को पहले यह ख्याल भी नहीं होता कि उसकी प्राप्ति से किन-किन महाशयों की मानहानि हो रही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ईर्ष्या धारण करनेवालों की दो दशाएँ होती हैं—असम्पन्न और सम्पन्न। असम्पन्न दशा का दिग्दर्शन तो ऊपर हो चुका। सम्पन्न दशा वह है जिसमें जो वस्तु हमें प्राप्त है उसे दूसरे को भी प्राप्त करते देख हमें दुःख होता है। असंपन्नता में दूसरे को अपने से बढ़कर होते देख दुःख होता है। सम्पन्न दशा में दूसरे को अपने बराबर होते देख दुःख होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असम्पन्न दशा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से घटकर न रहें, बराबर रहें और सम्पन्न दशा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि हम दूसरे से बढ़कर रहें, उसके बराबर न रहें। सम्पन्न की ईर्ष्या में आकांक्षा बढ़ी-चढ़ी होती है, इससे उसका अनौचित्य भी बढ़कर होता है। असम्पन्न ईर्ष्यावाला केवल अपने को नीचा समझे जाने से बचाने के लिए आकुल रहता है; पर सम्पन्न ईर्ष्यावाला दूसरे को नीचा समझते रहने के लिए आकुल रहता है। असम्पन्न की ईर्ष्या में नैराश्य का भाव और अपनी कमी का दुःख मिला रहता है, इससे उसकी कलुषता उतनी गहरी नहीं जान पड़ती। निराश और अभाव-पीड़ित मनुष्य जैसे इधर-उधर भूलता-भटकता फिरता है, वैसे ही ईर्ष्या की राह में भी जा पड़ता है। पर सम्पन्न ईर्ष्यालु की स्थिति ऐसी क्षोभकारिणी नहीं होती।

हमारा कोई साथी है जो किसी वस्तु में हमसे कम है। उसकी कमी और अपनी बड़ाई देख-दिखाकर हर घड़ी प्रयत्न होने का दुर्व्यसन हो गया है। इसी बीच उसको भी वह वस्तु प्राप्त हो जाती है और हमें जान पड़ता है कि हमारी स्थिति, जो सापेक्ष थी, मारी गई। अपने आनन्द में इस प्रकार बाधा पड़ते देख हम अपने साथी की उस प्राप्ति से दुःखी होते हैं और मन-ही-मन उस पर कुढ़ते भी हैं। साथी को बहुत दिनों तक तो इसका पता ही नहीं चलता, पीछे पता चलने पर भी वह हमारे इस दुःख में कुछ भी सहानुभूति नहीं करता। हमारी कुप्रवृत्ति का कारण बिना अवसर के हर घड़ी बड़ाई का अनुभव वा स्थिति की सापेक्षिकता का सुख भोगने की लत है। किसी स्थिति की वास्तविकता पर मुख्य और सापेक्षिकता पर गौण दृष्टि रखनी चाहिए। सापेक्षिकता नजर का खेल है, और कुछ नहीं। यदि हमें पेट-भर अन्न नहीं मिलता है, पर लोग समझते हैं कि हम अपने किसी साथी से अच्छे या धनी हैं तो लोगों की इस धारणा से हमारा पेट नहीं भर सकता। लोगों की इस धारणा से आनन्द होता है पर वह उस आनन्द का शतांश भी नहीं है जो वास्तविक स्थिति में प्राप्त वस्तुओं से मिलता है। अतः स्थिति के वास्तविक आनन्दों को छोड़ इस छाया-रूपी आनन्द पर मुख्य रूप से ध्यान रखना प्रमाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और स्थिति की रक्षा का बाधक है। यदि हम वास्तविक दशा की ओर ध्यान रख आवश्यक प्रयत्न न करते रहेंगे तो अपनी सँभाल नहीं कर सकते।

कभी-कभी ऐसा होता है कि लोगों की धारणा का कुछ मूल्य होता है, अर्थात उससे कोई अनुकूल स्थिति प्राप्त होती है। जैसे, यदि किसी गाँव में मूर्ख और विद्वान् दो वैद्य हैं तो लोग दूसरे को अधिक निपुण समझ उसके पास अधिक जायँगे और उसकी आमदनी अधिक होगी। अब यदि पहला वैद्य भी परिश्रम करये वैद्यक पढ़ लेगा और लोगों की यह धारणा हो जायगी कि यह भी विद्वान् है तो उस दूसरे वैद्य का पहले वैद्य की उन्नति से कुढ़ना शुद्ध ईर्ष्या नहीं, हानि का दुःख या झुँझलाहट है। ईर्ष्या निःस्वार्थ होनी चाहिए।

ईर्ष्या का दुःख प्रायः निष्फल हो जाता है। अधिकतर तो जिस बात की ईर्ष्या होती है, वह ऐसी बात होती है जिस पर हमारा वश नहीं होता। जब हम में अपमी ही स्थिति में अनुकूल परिवर्तन करने की सामर्थ्य नहीं है तब हम दूसरे की स्थिति में कहाँ तक परिवर्तन कर सकते हैं? जितनी जानकारी हमें अपनी स्थिति से हो सकती है उतनी दूसरे की स्थिति से नहीं। किसी स्थिति में परिवर्तन करने के लिए उसके अंग-प्रत्यंग का परिचय आवश्यक होता है। पर कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं जिनमें ईर्ष्या की तुष्टि का साधन सुगम होता है, जैसे यदि किसी आदमी को किसी दूसरे से कुछ लाभ पहुँचनेवाला होता है या पहुँचता होता है तो हम उस दूसरे से उसकी कुछ बुराई कर आते हैं और उसे उस लाभ से वंचित कर देते हैं। पर हमारी यह सफलता निरापद नहीं। यदि वंचित व्यक्ति को हमारी कार्रवाई का पता लग गया तो वह क्रुद्ध होकर हमारी हानि करने के लिए हमसे अधिक वेग के साथ यत्न करेगा। हंमने तो केवल जरा सा जाकर जबान हिलाने का कष्ट उठाया था, पर वह हमारी हानि करने के लिए पूरा परिश्रम करेगा।

ईर्ष्या में प्रयत्नोत्पादिनी शक्ति वहुत कम होती है। उसमें वह वेग नहीं होता जो क्रोध आदि में होता है क्योंकि आलस्य और नैराश्य के आश्रय से तो उसकी उत्पत्ति ही होती है। जब आलस्य और नैराश्य के कारण अपनी उन्नति के हेतु प्रयत्न करना तो दूर रहा हम अपनी उन्नति का ध्यान तक अपने मन में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं ला सकते, तभी हम हारकर दूसरे की स्थिति की ओर बार-बार देखते हैं और सोचते हैं कि यदि उसकी स्थिति ऐसी न होती तो हमारी स्थिति जैसी है वैसी ही रहने पर भी बुरी न दिखाई देती। अपनी स्थिति को ज्यों का त्यों रख सापेक्षिकता द्वारा सन्तोषलाभ करने का ढोला यत्न आलस्य और नैराश्य नहीं तो और क्या है ? जो वस्तु उज्ज्वल नहीं है उसे मैली वस्तु के पास रख-कर हम उसकी उज्ज्वलता से कब तक और कहाँ तक सन्तोष कर सकते हैं ? जो अपनी उन्नति के प्रयत्नों में बराबर लगा रहता है उसे न तो नैराश्य होता है और न हर घड़ी दूसरे की स्थति से मिलान करते रहने की फुरसत। ईर्ष्या की सबसे अच्छी दवा है उद्योग और आशा। जिस वस्तु के लिए उद्योग और आशा निष्फल हो उस पर से अपना ध्यान हटाकर सृष्टि की अनन्तता से लाभ उठाना चाहिए।

जिससे ईर्ष्या की जाती है उस पर उस ईर्ष्या का प्रभाव पड़ता है यह भी देख लेना चाहिए। ईर्ष्या अप्रेष्य मनोविकार है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी मनुष्य को अपने से ईर्ष्या करते देख हम भी बदले में उससे ईर्ष्या नहीं करने लगते। दूसरे को ईर्ष्या करते देख हम उससे घृणा करते हैं। दूसरे की ईर्ष्या का फल भोग कर हम उस पर क्रोध करते हैं, जिसमें अधिक अनिष्ट कारिणी शक्ति होती है। अतः ईर्ष्या एक ऐसी बुराई है जिसका बदला यदि मिलता है तो कुछ अधिक ही मिलता है। इससे इस बात का आभास मिलता है कि प्रकृति के कानून में ईर्ष्या एक पाप या जुर्म है। अपराधी ने अपने अपराध से जितना कष्ट दूसरे को पहुँचाया, अपराधी को भी केवल उतना ही कष्ट पहुँचाना सामाजिक न्याय नहीं है, अधिक कष्ट पहुँचाना न्याय है, क्योंकि निरपराध व्यक्ति की स्थिति को अपराधी की स्थिति से अच्छा दिख-लाना न्याय का काम है।

ईर्ष्या अत्यन्त लज्जावती वृत्ति है। वह अपने धारणकर्ता स्वामी के सामने भी मुँह खोलकर नहीं आती। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी धारणकर्ता उसको हरम की बेगमों से अधिक परदा कराता है। वह कभी प्रत्यक्ष रूप में समाज के सामने नहीं आती। उसका कोई बाहरी लक्षण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धारणकर्ता पर नहीं दिखाई देता। क्रोध में आंखें लाल हों, भय में आकुलता घृणा में नाक-भौं सिकुड़े, करुणा में आँसू आएँ पर ईर्ष्या में शायद ही कभी असावधानी से ठंडी सांस निकल जाय तो निकल जाय। ईर्ष्या इतनी कुत्सित वृत्ति है कि सभा-समाज में, मित्र-मंडली में, परिवार में, एकान्त कोठरी में; कहीं भी स्वीकार नहीं की जाती। लोग अपना क्रोध स्वीकार करते हैं, भय स्वीकार करते हैं, घृणा स्वीकार करते हैं, लोभ स्वीकार करते हैं, पर ईर्ष्या का नाम कभी मुँह पर नहीं लाते, ईर्ष्या से उत्पन्न अपने कार्यों को दूसरी मनोवृत्तियों के सिर मढ़ते हैं। यदि हमें ईर्ष्या के कारण किसी की प्रशंसा अच्छी नहीं लग रही है तो हम बड़ी गम्भीरता और सज्जनता प्रकट करते हुए उसके दोषों और त्रुटियों का निदर्शन करते हैं। वैर ऐसी बुरी वृत्ति तक कभी-कभी ईर्ष्या को छिपाने का काम दे जाती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No...

४ | साहित्य देवता

माखनलाल चतुर्वेदी

मैं तुम्हारी एक तस्वीर खींचना चाहता हूँ।

'परन्तु भूल मत जाना कि मेरी तस्वीर खींचते-खींचते तुम्हारी भी एक तस्वीर खिचती चली जा रही है।'

अरे, मैं तो स्वयं ही अपने भावी जीवन की एक तस्वीर अपने अटैची-केस में रक्खे हुए हूँ। तुम्हारी तसस्वीर बना चुकने के बाद मैं उसे प्रदर्शनी में रखने वाला हूँ किन्तु, मेरे मास्टर, मैं यह पहले देख लेना चाहता हूँ कि मेरे भावी-जीवन को किस तरह चित्रित कर तुमने अपनी जेब में रख छोड़ा है।

'प्रदर्शनी में रक्खो तुम अपनी बनाई हुई, और मैं अपनी बनाई हुई रख दूँ,—केवल तुम्हारी तसवीर।'

ना सेनानी, मैं किसी भी आईने पर बिकने नहीं आया। मैं कैसा हूँ, यह पतित होते समय खूब देख लेता हूँ। चढ़ते समय तो तुम्हीं, केवल तुम्हीं, दीख पड़ते हो।

'क्या देखना है।'

तुम्हें; और तुम कैसे हो यह कलम के घाट उतारने के समय, यह हरगिज़ नहीं भूल जाना है कि तुम किसके हो।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR LIBRARY Jangamawadi Math, Varanasi Acc. No. ....

'आज चित्र खींचने की बेचैनी क्यों है ?'

कल तक मैं तुम्हारे मोल-तोल कूता करता था। आज अपनी इस वेदना को लिखने के आनन्द का भार मुझसे नहीं सँभलता।

'सचमुच पत्थर की कीमत बहुत बड़ी होती है; वह बोझीला ही अधिक होता है।'

बिना बोझ के छोटे पत्थर भी होते हैं जिनमें से एक-एक की कीमत पचासों हाथियों से नहीं कूती जाती। परन्तु—

'परन्तु क्या ?'

मेरे प्रियतम, तुम वह मूल्य नहीं हो जिसकी, अभागे गाहक की अड़चनों को देखकर, अधिक-से-अधिक माँग की जाती है।

हाँ, तो तुम्हारा चित्र खींचना चाहता हूँ। मेरी कल्पना की जीभ को लिखने दो; कलम की जीभ को बोल लेने दो। किन्तु, हृदय और मसिपात्र दोनों तो काले हैं। तब मेरा प्रयत्न, चातुर्य का अर्ध-विराम, अल्हड़ता का अभिराम, केवल धवलता का गर्व गिराने वाला श्याम मात्र होगा। परन्तु यह काली बूँदें अमृत-बिन्दुओं से भी अधिक मीठी, अधिक आकर्षक और मेरे लिए अधिक मूल्यवान् हैं। मैं उनसे अपने आराध्य का चित्र जो बना रहा हूँ !

× ⊠ ⊠

कौन-सा आकार दूँ ? मानव-हृदय के मुग्ध संस्कार जो हो ! चित्र खींचने की सुध कहाँ से लाऊँ ? तुम अनन्त जाग्रत आत्माओं के ऊँचे और गहरे,—पर-स्वप्न जो हो। मेरी काली कलम का बल समेटे नहीं सिमटता। तुम कल्पनाओं के मन्दिर में बिजली की व्यापक चकाचौंध जो हो ! मानव-सुख के फूलों और लड़ाके सिपाही के रक्त-बिन्दुओं के संग्रह, तुम्हारी तसवीर खींचूँ मैं ? तुम तो वाणी के सरोवर में अन्तरात्मा के निवास की जगमगाहट हो। लहरों से परे, पर लहरों में खेलते हुए। रक्त के बोझ और तपन से खाली, पर पंछियों, वृक्षराजियों और लताओं तक को रुपहलेपन में नहलाए हुए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेदनाओं के विकास के संग्रहालय, तुम्हें किस नाम से पुकारूँ? मानव-जीवन की अंत तक पनपी हुई महत्ता के मन्दिर ध्वनि की सीढ़ियों से उतरता हुआ ध्येय का माखनचोर क्या तुम्हारी ही गोद के कोने में 'राधे' कह कर तो नहीं दौड़ा आ रहा है? अहा, तब तो तुम जमीन को आसमान से मिलाने वाले जीने हो; गोपाल के चरण-चिह्नों को साध-साध कर चढ़ने के साधन! ध्वनि की सीढ़ियाँ जिस क्षण लचक रही हों, और कल्पना की सुकोमल रेशम-डोर जिस सयय गोविन्द के पदारविन्द के पास पहुँच कर झूलने की मनुहार कर रही हो, उस समय यदि यह झूल पड़ता होगा?--आह, तुम कितने महान् हो। इसीलिए लाँगफेलो बेचारा, तुम्हारे चरण-चिह्नों के मार्ग की कुंजी, तुम्हारे ही द्वार पर लटका गया है, मेरे मास्टर! चिड़ियों की चहक का संगीत, मैं और मेरी अमृत-निस्यंदिनी गाय, व्रजलता, दोनों सुनते हैं। 'सखि चलो सजन के देस, जोगन बनके धूनी डालेंगे'—मैं और मेरा घोड़ा दोनों जहाँ थे वहीं 'शम्भु' जी ने अपनी यह तान छेड़ी। परन्तु वह तो तुम्हीं थे, जिसने द्विपद और चतुष्पद का विश्व को निगूढ़ तत्व सिखाया। अरे, पर मैं भूल ही गया; मैं तो तुम्हारी तस्वीर खींचने वाला था न!

× × ×

हाँ; तो अब मैं तुम्हारी तसवीर खींचना चाहता हूँ। पशुओं को कच्चा खाने वाली जवान और लज्जा ढकने के लिए लपेटी जाने वाली वृक्षों की छालें, वे इतिहास से भी परे खड़े हैं; और यह देखो श्रेणी-बद्ध अनाज के अंकुर और शाहज़ादे कपास के वृक्ष बाकायदा अपने ऐश्वर्य को मस्तक पर रखकर भू-पाल बनने के लिए वायु के साथ होड़ बद रहे हैं। इन दोनों जमानों के बीच की जंजीर तुम्हीं तो हो! विचारों के उत्थान और पतन तथा सीधे और टेढ़ेपन को मार्ग-दर्शक बना तुम्हीं न कपास के तंतुओं से झीने तार खींचकर विचार ही की तरह आचार के जगत् में कल्याणी पांचाली-वाणी की लाज बचा रहे हो!

कितने दुःशासन आये और चले गये। तुम्हारी बीन ने रात को तड़पा देने वाली सोरठ गाई थी और सवेरे विश्व-संहारकों से जूझने जाते समय उसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीन से युद्ध नक्कारे पर डंके की चोट लगाई थी। नगाधिराजों के मस्तक पर से उतरने वाली निम्नगाओं की मस्ती भरी दौड़ पर और उनसे निकलनेवाली लहरों की कुरबानी से हरियाली होने वाली भूमि पर, लजीली पृथ्वी से लिपटे तरल नीलाम्बर महासागरों पर, और उनकी लहरों को चीर कर गरीबों के रक्त से कीचड़ सान, साम्राज्यों का निर्माण करने के लिए दौड़ने वाले जहाजों के झंडों पर, तुम्हीं—केवल तुम्हीं लिखे दीखते हो।

इंगलैंड का प्रधानमंत्री, इटली का डिक्टेटर, अफ़गानिस्तान का पदच्युत, चीन का ऊँचा कर जागता हुआ और रूस का सिंहासन उलटने और क्रान्ति से शान्ति का पण्याह्वान करने वाला गरीब—यह तो तुम्हीं हो। यदि तुम स्वर्ग न उतारते तो मन्दिरों में किसकी आरती उतरती ? वहाँ चमगीदड़ टँगे रहते; उलूक बोलते।

मस्तिष्क के मन्दिर जहाँ भी तुमसे खाली हैं, यही तो हो रहा है। कुतुबमीनारों और पिरामिडों के गुम्बज, तुम्हारे ही आदेश में आसमान से बातें कर रहे हैं।

आँखों की पुतलियों में यदि तुम कोई तसवीर न खींच देते तो वे बिना दाँतों के ही चींथ डालतीं; बिना जीभ के ही रक्त चूस लेतीं।

वैद्य कहते हैं धमनियों के रक्त की दौड़ का आधार हृदय है—क्या हृदय तुम्हारे सिवा किसी और का नाम है ?

व्यास के कृष्ण और बालमाकि के राम जिसके पंखों पर चढ़कर हजारों वर्षों की छाती छेदते हुए आज भी लोगों के हृदयों में विराज रहे हैं ? वे चाहे कागज के बने हों, चाहे भोज-पत्रों के, वे पंख तो तुम्हारे ही थे।

रूठो नहीं, स्याही के शृंगार, मेरी इस स्मृति पर तो पत्थर ही पड़ गये कि—

मैं तुम्हारा चित्र खींच रहा था।

× × ×

परन्तु तुम सीधे कहाँ बैठते हो ? तुम्हारा चित्र ? बड़ी टेढ़ी खीर है ! सिपहसालार, तुम देवत्व को मानवत्व की चुनोती हो। हृदय से छनकर,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धमनियों में दौड़ने वाले रक्त की दौड़ हो और हो उन्माद के अतिरेक के रक्त-तर्पण भी।

आह, कौन नहीं जानता कि तुम कितनों ही की वंशी की धुन हो; धुन वह, जो गोकुल से उठकर विश्व पर अपनी मोहिनी का सेतु बनाए हुए है। काल की पीठ पर बना हुआ वह पुल मिटाए मिटता नहीं, भुलाए भूलता नहीं।

ऋषियों का राग, पैगम्बर का पैगाम, अवतारों की आन युगों को चीरती किस लालटेन के सहारे हमारे पास तक आ पहुँची? वह तो तुम हो। और आज भी कहाँ ठहर रहे हो? सूरज और चाँद को अपने रथ के पहिये बना, सूझ के घोड़ों पर बैठे, बढ़े ही चले जा रहे हो प्यारे! उस समय हमारे सम्पूर्ण युग का मूल्य मेल-ट्रेन के मार्ग में पड़ने वाले छोटे से स्टेशन का-सा भी नहीं होता।

पर इस समय तो तुम मेरे पास बैठे हो।

तुम्हारी एक मुट्ठी में विश्व का देवत्व छटपटा रहा है—अपने समस्त समर्थकों समेत; दूसरी मुट्ठी में भूतकाल का विकसित पुरुषार्थ विराजमान है।

धूल के नन्दन में परिवर्तित स्वरूप कुंजविहारी, आज तो कल्पना की फुलवारियां भी विश्व की स्मृतियों में तुम्हारी तर्जनी के इशारों पर लहलहा रही हैं।

तुम नाथ नहीं हो, इसीलिए मैं अनाथ नहीं हूँ। किन्तु हे अनन्त पुरुष, यदि तुम विश्व की कालिमा का बोझ सँभालते मेरे घर न आते तो ऊपर आकाश भी होता और नीचे जमीन भी; नदियां भी बहतीं, और सरोवर भी लहराते, परन्तु मैं और चिड़ियां, दोनों, और छोटे-मोटे जीव-जन्तु स्वाभाविक लता-पत्रों और अन्नकणों से अपना पेट भरते होते। मैं भर वैशाख में भी वृक्षों पर शाखामृग बना होता। चीते-सा गुर्राता, मोर-सा कूकता और कोयल-सा गा भी देता।

परन्तु मेरा और विश्व के हरियालेपन का उतना ही सम्बन्ध होता जितना नर्मदा के तट पर हरसिंगार की वृक्ष-राजि में लगे हुए टेलिग्राफ के खम्भे का

CC0: In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नर्मदा से कोई सम्बन्ध हो।

उस दिन भगवान् 'समय' न जाने किसका, न जाने कब कान उमेठ कर चलते बनते? मुझे कौन जानता? विन्ध्य की जामुनों और अरावली की खिरनियों के उत्थान और पतन का इतिहास क़िसके पास लिखा है! इसीलिए तो मैं तुमसे कहता हूँ—

'ऐसे ही बैठे रहो, ऐसे ही मुसकाहु।"

इसलिए कि अन्तरतर की तरल-तूलिकाएँ समेट कर, अराजक! मैं तुम्हारा चित्र खींचना चाहता हूँ।

× × ×

क्या तुम अराजक नहीं हो? कितनी गद्दियाँ तुमने चकनाचूर नहीं कीं? कितने सिंहासन तुमने नहीं तोड़ डाले! कितने मुकुटों को गला कर घोड़ों की सुनहली खोगीरें नहीं बना दी गयीं!

सोते हुए अखण्ड नरमुण्डों के जागरण! नाड़ी रोगी के ज्वर की माप बताने में चूक सकती है, किन्तु तुम मुग्ध होकर भी जमाने को गणित के अंकों जैसा नपा-तुला और दीपक जैसा स्पष्ट निर्माण करते चले जा रहे हो। आह, राज्य पर होने वाले आक्रमण को बरदाश्त किया जा सकता है, किन्तु मनोराज्य की लूट तो दूर, उस पर पड़ने वाली ठोकर कितने प्रयत्न नहीं कर डालती।

सोने के सिंहासनों पर विराजमानों की हत्याओं से जमाने के मनस्वियों में हाथ लाल हैं और नक्शे पर दिये जाने वाले रंग की तरह उस शक्ति की सीमा निश्चित है। परन्तु मनोराज्य की मृगछाला पर बैठे हुए बिना शस्त्र और बिना सेना के वृहस्पति के अधिकार को चुनौती कौन दे सके?

मनोराज्य पर छूटने वाला तीर प्रलय की प्रथम चेतावनी लेकर लौटता है। मनोराज्य के मस्तक पर फहराता हुआ विजय-ध्वज जिस दिन धूलि-धूसरित होने लगे उस दिन मनुष्यत्व दूरबीन से भी ढूँढे कहाँ मिलेगा! उस दिन, ज्वालामुखी फट पड़ा होगा, वज्र टूट पड़ा होगा।

प्यारे! शून्य के अंक, गति के संकेत और विश्व के पतन-पथ की तथा विस्मृति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की गति की लाल, झंडी तुम्हीं तो हो। तुम्हारा रंग उतरने पर वह आत्म-तर्पण ही है जो फिर तुम पर लालिमा बरसा सके। जिस मन्दिर का झंडा लिपट जाय, वह डाँवाडोल हो उठे, उसमें नर-नारायण नहीं रहते। उस देश को पराए चरण अभी धोने हैं, अपने मांस से पराये चूल्हे अभी सौभाग्यशील बनाये रखने हैं; पराई उतरन अभी पहननी है। मैं, प्रियतम, तुम्हारी—

"उतरन पहनी हुई तसवीर नहीं खींचूँगा!"

× × ×

उतरन—बुरी तरह स्मरण हो आया! बुरे समय, बुरे दिनों! अपना कुछ न रखने वाला ही उतरन पहने।

जो क्षितिज के परे अपनी अँगुली पहुँचा पावे, जो प्रत्यक्ष के उस ओर रक्खी हुई वस्तु को छू सके, वह उतरन क्यों पहने?

फ्रेंच और जर्मन जैसी भाषाओं का आपस का लेन-देन उतरन नहीं, वह तो भाई-चारे की भेंट है।

एक भिखारिन माँ मेरी भी है। उसने भी रत्न प्रसव किये हैं। पत्थरों से बोझीले; कंकड़ों से गिनती में अधिक; खाली अन्तःकरण में मृदंग से अधिक आवाज़ करने वाले।

मातृ-मंदिर में उतरन पर एक दूसरे से होड़ ले रहा है। उतरन-संग्रह की बहादुरी का इतिहास उसकी पीठ पर लदा हुआ है।

गत वर्ष होने वाले विश्व-परिवर्तनों के छपे, पुराने अखबारों पर, आज हम हवाई जहाज के नये आविष्कार की तरह बहस करते हैं।

वीणा, वंशी और जल-तरंग का सर्वनाश ही नहीं हो चुका, हारमोनियम और पियानो भी किस काम आयेंगे?

हमारा कोई गीत तो हो! कला से नहलाया हुआ, हृदय तोड़कर निकला हुआ।

वीणा में तार नहीं, दिल में गुबार नहीं।

न जाने हम तुम्हारा जन्मोत्सव मनाते हैं या मरण-त्योहार? बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे हवाई जहाज देखा करते हैं। बिल्ली के रास्ता काट जाने पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारा अपशकुन होता है; किन्तु वेतार का तार स्विट्जरलैण्ड की खबर आस्ट्रेलिया पहुँचाकर भी हमारी श्रुतियों को नहीं छूता ! तब हमारी सरस्वती से तो उसका सम्बन्ध ही कैसे हो सकता है ? एंजिन के रूप में धधकती हुई ज्वालामुखी का एक व्यापार हमारी छाती पर हो रहा है।

प्यारे ! इस समय अधोगति की ज्वाल-मालाओं में ऊँचा उठने के लिए आकर्षण चाहिए। कृषकों ने इसी लालच से तो तुम्हारा नाम कृष्ण रखा होगा।

जरा तुम युग-संदेशवाहिनी अपनी बाँसुरी लेकर बैठ जाओ। रामायण में जहाँ बालकांड है, वहाँ लंकाकांड भी तो है। तुम्हारी तान में भैरवी भी हो, कलिंगड़ा भी हो।

जरा वंशी लेकर बैठ जाओ। मैं तुम्हारा चित्र मुरलीधर के रूप में चाहता हूँ।

× × ×

'शिव संहार करते हैं'—कौन जाने ? किन्तु मेरे सखा ! तुम जरूर महलों के संहारक हो। झोपड़ियों से ही तुम्हारा दिव्य गान उठता है। किन्तु यह हमारी पर्ण-कुटी देखो। जाले चढ़ गये हैं, वातायन वन्द हो गये हैं। सूर्य की नित्य नवीन-प्रेरक और प्राण-पूरक किरणों की यहाँ गुजर कहाँ ! वे तो द्वार खटखटा कर लौट जाती हैं।

द्वार पर चढ़ी हुई बेलें पानी की पुकार करती हुई बिना फलवती हुए ही अस्तित्व खो रही हैं। पितृ-तर्पण करने वाले अल्हड़ों को लेकर मैं इस कुटी का कूड़ा साफ करने ही में लग जाना चाहता हूँ। कितने तप हुए कि इस कुटिया में सूर्य दर्शन नहीं होते। मेरे देवता ! तुम्हारे मन्दिर की जब यह अवस्था किये हुए हूँ, तब बिना प्रकाश, बिना हरियालेपन, बिना पुष्प और बिना विश्व की नवीनता को तुम्हारे द्वार पर खड़ा किये, तुम्हारा चित्र ही कहाँ उतार पाऊँगा ?

विस्तृत नीले आसमान का पत्रक पाकर भी, देवता ! तुम्हारी तसवीर खींचने में शायद दैवी-चितेरे इसीलिए असफल हुए; उन्होंने चन्द्र की रजतिमा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की दावात में कलम डुबोकर चिन्तन की कल्पना पर चढ़ने का प्रयत्न किया और प्रतीक्षा की उद्विग्नता में सारा आसमान धवीला कर चलते बने। इस बार मैं पुष्प लेकर नहीं, कलियाँ तोड़कर आने की तैयारी करूँगा; और ऐ विश्व के प्रथम प्रभात के मन्दिर! उषा के तमोमय प्रकाश की चादर तुम्हें ओढ़ाकर, तुम्हारे उस अन्तस्तल का चित्र खींचने आऊँगा, जहाँ तुम अशेष संकटों पर अपने हृदय के टुकड़े बलि करते हुए, शेष के साथ खिलवाड़ कर रहे होंगे।

आज तो उदास, पराजित और भविष्य की वेदनाओं की गठरी सिर पर लादे, मेरे बाग में उन कलियों के आने की उम्मीद में ठहरता हूँ जिनके कोमल अन्तस्तल को छेदकर उस समय जब तुम (नगाधिराज का मुकुट पहने दोनों स्कंधों से आने वाले संदेशों पर मस्तक) डुला रहे होंगे, गंगी और जमुनी का हार पहने वंग के पास तरल चुनौती पहुँचा रहे होंगे, नर्मदा और ताप्ती की करधनी पहने विन्ध्य को विश्व नापने का पैमाना बना रहे होंगे, कृष्ण और कावेरी की कोरवाला नीलाम्बर पहने विजय नगर का संदेश पुण्य-प्रदेश से गुजार कर सह्याद्रि और अरावली को सेनानी बना मेवाड़ में ज्वाला जगाते हुए देहली से पेशावर और भूटान चीरकर अपनी चिरकल्याणमयी वाणी से विश्व को न्योता पहुँचा रहे होंगे, और हवा और पानी की बेड़ियाँ तोड़ने का निश्चय कर, हिन्द महासागर से अपने चरण धुलवा रहे होंगे—

—ठीक उसी सन्निकट भविष्य में, हाँ सूजी से कलियों का अन्तःकरण छेद, मेरे प्रियतम! मैं तुम्हारा चित्र खींचने आऊँगा।

तब तक चित्र खींचने योग्य अरुणिमा भी तो तैयार रखनी होगी।

बिना मस्तकों को गिने और रक्त को मापे ही मैं तुम्हारा चित्र खींचने आ गया।

देवता! वह दिन आने दो; स्वर सध जाने दो।

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५ | भारतीय संस्कृति और नारी

महादेवी वर्मा

संस्कृति शब्द का उपयोग इतने सन्दर्भों तथा इतने अर्थों में होता आ रहा है कि उसकी एक परिभाषा देना दुष्कर नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। प्रायः भारतीय 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, परन्तु, तत्वतः वह कल्चर का पर्याय नहीं है। कल्चर विज्ञान के उन प्रयोगों के लिये भी व्यवहृत होता है जो कृषि, जीवाणुसंवर्धन आदि में किये जाते हैं। वैज्ञानिक जङ्गली चार छोटी पंखड़ियों वाले गुलाब को कल्चर करके उद्यान का अनेक दलों वाला बड़ा गुलाब बना सकता है, किसी वृक्ष की डाल पर दूसरे भिन्न वृक्ष की कलम लगा कर दो प्रकार के फल या दो रङ्ग के फूल खिला सकता है। कल्चर करके विशेष के विषाणुओं के सम्बन्ध में नवीन तथ्य प्राप्त कर सकता है।

परन्तु संस्कृति मानव चेतना का ऐसा विकास-क्रम है, जो उसके अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग की परिष्कृति करके विशेष जीवन-पद्धति का सृजन करती है।

यह विकास-क्रम देश-काल को विभाजित नहीं करता, परन्तु देश-काल अपने घटना-क्रम के लेखे-जोखे के लिये इसे खण्डों में बांट कर देखता है। जैसे नदी तट की विविधता का विभाजन नहीं करती, पर तटों की भिन्नता ही उसे अपने उपयोग की दृष्टि में भिन्न संज्ञा देती है, वैसे ही मानव के संस्कार-क्रम की गति है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तुतः संस्कृति मानव चेतना की प्राकृतिक ऊर्ध्वंगति का प्रकाशन है। मानव के अन्तर्भूत और प्रसुप्त विशेषताओं की परिष्कृति और अभिव्यक्ति है। न वह ऐसे प्रयोगों में है जिनमें से अनेक व्यर्थ सिद्ध होते हैं और न किसी विजातीय तत्व का आरोपण, जिसे सुविधानुसार उतारा जा सकता है।

सभ्यता और संस्कृति शब्दों में भी अर्थ भेद है। सभ्यता मानव के बाह्य आचरण से सम्बन्ध रखती है क्योंकि उसका मूल अर्थ सभा की सदस्यता में निहित है, अन्तर्जगत के संवेगों में नहीं। व्यवहार में सभ्य व्यक्ति का अन्तर्जगत असंस्कृत हो सकता है, परन्तु अन्तर्जगत में संस्कृत व्यक्ति वाह्य रूप में भी असभ्य नहीं हो सकता।

वैसे तो विकास जैवी सृष्टि का स्वभाव ही है, किन्तु मनुष्य का विकास उसकी अनेक अन्तःवाह्य प्रवृत्तियों के कारण रहस्यमय तथा जटिलतम हो गया है।

सृष्टि में अचेतन, चेतन, अवचेतन तथा पराचेतन सभी प्रकार की चेतनाओं की भिन्न भिन्न स्थितियाँ हैं; परन्तु मानव में चेतन, अवचेतन तथा पराचेतन एक साथ हैं, अतः वह चेतना का विविध विकासात्मक एक रूप है; पशु-पक्षी जगत के समान उसे प्रकृति से महज चेतना भी मिली, परन्तु उसके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का संघात अन्तःकरण भी है, जिसके द्वारा वह प्रकृतिदत्त प्रवृत्तियों को कभी दमित और कभी संयमित करके इच्छानुसार दिशा भी दे सकता है और नया सृजन भी कर सकता है।

उदाहरणार्थ आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। प्रकृति में आत्मरक्षा की सहज प्रवृत्ति जीव-मात्र को दी है। मृत्यु और जीवन का अन्तर न जानते हुए भी पशु-पक्षी वधिक से डरते हैं, मृत्यु से आतंकित होते हैं।

मनुष्य में इसी आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को अपने अस्तित्व से परिवार, परिवार से ग्राम, देश तथा देश से विश्वरक्षा तक फैला कर एक नवीन जीवन मूल्य का निर्माण कर लिया है। वह अपने निमित्त जीवन मूल्य के लिए मृत्यु को स्वयं चुनौती देता है।

चेतना से उसने अपने शरीर को अधिक से अधिक साहसिक कार्य के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योग्य बनाया, समाज का निर्माण किया और भौतिक तथा मानसिक अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन खोज लिए। उसके अवचेतन ने उसकी सुख-दुखात्मक अनुभूतियों, संवेगों के संस्कार इस प्रकार संचित किये कि वे अप्रत्यक्ष रूप में उसके जीवन को शक्ति दे सके। उसकी पराचेतना ने जीवन की रहस्यमयता की ही शोध नहीं की उसके कारण और समाधानों को भी खोजा और सृष्टिकर्त्ता के रूप में विश्व में व्याप्त चेतनापुंज से ईश्वर का भी सृजन किया।

संस्कृति उसकी चेतना की खोज और उपलब्धियों का लेखा है। इस प्रकार संस्कृति मानव-मात्र का दाय भाग होने के कारण विश्व भर की है, परन्तु देश-काल जनित भेद तथा प्राकृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण उसमें अनेक अन्तर तथा वाह्य भेद-प्रभेद हो गए हैं। वे भेद-प्रभेद उसकी समाज-रचना, धर्म, नीति, साहित्यकला, शासन आदि में व्यक्त होकर भिन्न संज्ञायें पाते हैं।

वाह्य-जगत से क्रिया-प्रतिक्रिया का माध्यम मानव शरीर ही रहता है, अतः क्रिया-प्रतिक्रिया के वाह्य-साधन मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ तथा उसके प्रभाव को आन्तरिक रूप से ग्रहण करने के साधन ज्ञानेन्द्रियाँ ही हैं। इस प्रभाव से उत्पन्न अनुभूति हृदय की तथा वोध-बुद्धि की दास है। बुद्धि या हृदय का कार्य युगपत अर्थात् एक साथ होता है—पैर में चुभे काँटे की झलक हृदय से तथा पैर हटाने का आदेश मस्तिष्क से सम्बन्ध रखता है। इस दोहरी क्रिया-पद्धति से प्राप्त निष्कर्ष ही मानव चेतना में एक संस्कार जगत का निर्माण करते रहते हैं। इससे रस पाकर मनुष्य की स्मृति, अनुमान, कल्पना, भावना आदि समाज, दर्शन, साहित्य आदि में होकर जिस जीवन पद्धति का निर्माण करते हैं, हम उसी को संस्कृति की संज्ञा देते हैं।

जहाँ प्राकृतिक परिवेश से मानव का संघर्ष घोरतम दुःखद है, वहाँ यह जीवन पद्धति एक आक्रामक तथा सतर्क रक्षापरक रूप ले लेती है जैसा कि मरुभूमियों में पनपी संस्कृतियों से स्पष्ट है। किन्तु जहाँ यह परिवेश अपने जीवनोपयोगी अवदान तथा सौन्दर्य से मानव समूह को किसी कठिन संघर्ष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के लिए बाध्य नहीं करता वहाँ जीवन पद्धति सहज, उदार और स्नेहमयी बन जाती है, जिसका उत्कृष्ट उदाहरण भारतीय संस्कृति है।

पृथ्वी सभी मानव समूहों की जन्मदात्री है, किन्तु जहाँ क्षण भर की असावधानी से बालू का निर्मम बवण्डर, मनुष्य को बालू का निर्जीव टीला बना सकता है और बूंद भर जल के लिए यात्री को इस धरती पर मीलों दौड़ना पड़ता है, वहाँ मानव धरती को माता की संज्ञा नहीं दे सकता।

जिस भूखण्ड की धरती अपने अजस्रदान से मानव को माता के अंक का कोमल स्नेहिल स्पर्श देती है वही "माता भूमिः पुत्रो हम् पृथिव्या" कही जा सकती है।

भारतीय संस्कृति भारत की सजला सुफला मलयजशीलता धरती पर विकसित होने के कारण न अनुदार हो सकी है न आक्रामक। उसने मनुष्य के सूक्ष्म विचार से लेकर स्थूल कर्म तक को एक ऐसे स्वर्णिम सूत्र में बाँधा है, जिसमें जीवन के सार्वभौम विकास देने वाले सभी मूल्य पिरोये जा सकें। संस्कृत मानव की संज्ञा पाने के लिए उसे अन्तः वाह्य परिष्कार के सभी आयाम निष्ठापूर्वक पार करने पड़ते हैं।

भारत की धरती कहीं तुषार किरीटिनी, कहीं सुमन खचित हरितांचला कहीं मुक्ताभ तरंगमालिनी है। उसके विविध रूपी सौन्दर्य को आख्यात करने के पहले भारतीय पुरुष ने अपने पार्श्व में खड़ी नारी के सौन्दर्य को नहीं देखा होगा, यह मान लेना कठिन है।

भारतीय संस्कृति का सौन्दर्यबोध नारी रूप से अविच्छिन्न सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है, यह कहना अतिशयोक्ति न होकर तथ्य कथन ही होगा।

यदि विश्व इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो सभी प्राचीन संस्कृतियों में नारी के देवी रूप की प्रतिष्ठा मिलेगी। मिश्र की भेंट, यूनान की एथोस, एफ्रोदिती, डायना, मिनर्वा, भारत की उषक्ष अदिति आदि इसी तथ्य के प्रमाण हैं।

सम्भवतः इसका कारण मातृशक्ति की रहस्यमयता रही होगी। आदिम युगों में जब मानव समूह ने समाज, विवाह संस्था आदि का निर्माण नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया होगा, तब समूह की मातृसत्ता की स्थिति ही रही होगी। जन्मदात्री ही पुरुष पुत्र का एकमात्र परिचय तथा जन्म ही सबसे रहस्यमयी घटना रही होगी। ऐसी स्थिति में नारी को गृहस्थमयी शक्तियों से सम्पन्न मान लेना स्वाभाविक ही कहा जायगा।

आर्य संस्कृति से पूर्व हमें जो सिन्धु घाटी और मोहनजोदड़ो में तत्कालीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें मातृदेवी की मूर्ति भी है। उससे ज्ञात होता है कि भारत में आर्य सभ्यता के पूर्व भी नारी को रहस्यमयी शक्ति ही माना गया था।

यह भी तथ्य है कि अनेक देशों की संस्कृति में पशु और नारी में आत्मा की स्थिति ही नहीं स्वीकार की गई। पर भारतीय संस्कृति ने नारी के आत्म रूप को ही नहीं उसके दिव्यात्मक रूप को ऐसी प्रतिष्ठा दी जो देश-काल के परिवर्तनक्रम में परिवर्तित होते-होते ही तत्वतः अपने मूलरूप में अब तक भारतीय जीवन पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

यदि केवल जन्म देने की रहस्यमयता ही स्त्री के महत्व का कारण होती तो उसका तत्वतः पूजाई रूप प्राणिशास्त्र के विज्ञान के विकास की चकाचौंध में खो जाता। किन्तु उसका दिव्यात्मा रूप भारतीय संस्कृति में अनेक रूपों में स्थिति रखता है—भारतमाता के रूप में, राष्ट्रीयता में, प्रकृति के रूप में, सांख्यदर्शन में, माया के रूप में, वेदान्त दर्शन में, शक्ति के रूप में, तन्त्र साधना में, राधा सीता के रूप में सगुणोपासना में, ब्रह्म की अंशभूत प्रेयसी आत्मा के रूप में, निर्गुण साधना में, अतः उसे भारतीय संस्कृति के विकासक्रम में भिन्न करके देखना असम्भव है।

प्रत्येक संस्कृति की प्रथम इकाई परिवार, द्वितीय समाज, तृतीय नगर, चतुर्थ राष्ट्र तथा पंचम विश्व है। वस्तुतः संस्कृति एकाकी व्यक्ति की न होकर समष्टि की होती है, अतः 'एको हम बहुस्याम' ही उसका मूल-मन्त्र है।

गृह के दो घटक हैं नारी और पुरुष, इसी से उन्हें दम्पति कहा गया है।

किसी देश या किसी युग में मानव समाज की बाह्य और आन्तरिक जीवन पद्धति जानने के लिए इन्हीं दो घटकों के परस्पर सम्बन्ध, कर्त्तव्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तथा अधिकारों पर दृष्टिपात अनिवार्य हो जाता है।

भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत वेदकालीन जीवन पद्धति है, जो सहस्रों वर्षों की दूरी पर रह कर भी हमारे वर्तमान जीवन पर उसी प्रकार आलोक फेंकती है, जैसे करोड़ों मीलों की दूरी पर रह कर भी सूर्य अपनी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्थिति से हमारे दिन रात का कारण है। जिसे हम इतिहास कहते हैं वह घटनाओं का संकलन है, संवेगों तथा तज्जनित संस्कारों का नहीं। फिर प्रत्येक प्राचीन संस्कृति में बहुत सा अंश ऐसा भी रहता है जहाँ इतिहास की किरणें नहीं पहुँच पातीं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भूखण्ड का मानव जीवन अनेक अलिखित संस्कारों से संचालित होता है, लिखित इतिहास से नहीं।

आज भी हमारा जीवन विश्वासों में साहित्य कला आदि की मूलभूत प्रवृत्तियों में, राष्ट्र भावना में, जातकर्म, विवाद आदि सामाजिक क्रियाओं में उतना ही अतीत के निकट पहुँच जाता है, जितना उससे दूर है।

नदी ज्यों-ज्यों उद्गम से दूर होती जाती है त्यों-त्यों उद्गम अलक्ष्य होता जाता है। नदी को नये-नये सम-विषम, हरीतिमामय और सिकतामय तट मिलते हैं, नये मोड़ मिलते हैं, ग्राम और निर्जन वन पार करने पड़ते हैं, परन्तु अलक्ष्य उद्गम से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। प्रत्युत अलक्ष्य उद्गम पर उसकी गति निर्भरता और अधिक बढ़ जाती है। और यदि किसी बाधा से यह अलक्ष्य टूट जाता है तो नदी या तो सूख जाती है या सीमाओं में बँध कर सरोवर या पोखर बन जाती है। यह स्थिति तब आती है जब उद्गम में अगम ऊँचाई और अतल गहराई न हो, जिससे वह निरन्तर नया जल पहुँचा सके।

अनेक प्राचीन संस्कृतियाँ इसी कारण लुप्त हो गयीं। भारतीय संस्कृति में ऐसी स्थिति नहीं उत्पन्न हुई क्योंकि उसका उद्गम जीवन मूल्यों की दृष्टि में उन्नत भी है और भाव-बोध की दृष्टि से गहरा भी।

दिव्य रूप भी तीन प्रकार के हैं, एक में प्रकृति के व्यापक दिव्य-रूप की प्रतीक देवियाँ हैं जैसे उषक्ष, सूर्या, रात्रि आदि। दूसरे में पृथ्वी, सिन्धु सरस्वती नदी आदि में चेतना का आरोप करके उनके नारी रूप की कल्पना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की गई है। तीसरे प्रकार में अमूर्त्त भावनाओं की प्रतीक देवियाँ हैं, जिन्हें अदिति, दिति, श्रद्धा आदि की संज्ञा दी गई है।

दिव्य देवियों में उषा को जिन रेखाओं और रंगों से अङ्कित किया गया है वे नारी सौन्दर्य को ही नहीं, प्रकृति के चिर नवीन सामंजस्य को भी व्यक्त करते हैं।

वह "आलोकदुकूलिन स्वर्ग कन्यका नूतन,
पूर्वायन शोभी उदित हुई उज्ज्वल तेन।

ही नहीं है वरन् व्रेता संग्रामों की ऐश्वर्यों की रानी भी है।

रात्रि भी असंख्य नक्षत्रों से जगमगाती है और ऋषि प्रार्थना करता है:

माता! रात्रि सौंप जाना तू हमें उषा के संरक्षण में,
उषा हमें फिर सौंप दे सन्ध्या समय विदा के क्षण में।

पार्थिव देवियों में पृथ्वी के जिस मातृरूप की कल्पना की गई है वह तो विश्व राष्ट्र का राष्ट्रगीत है।

धरा हुई जो धारण करके यह जग सारा,
उसका वन्दना आज कर रहा गान हमारा।

कह कर ऋषि ने जीवमात्र की ओर से धरती को प्रणाम किया।

आकाश को पिता अवश्य कहा गया है, परन्तु जो कोमल भावना धरती के लिये है वह आकाश के लिये नहीं मिलती।

सिन्धु सरस्वती, गंगा, शुतद्री आदि नदियों में देवी रूप के स्तवन में उनके वेग गति आदि के अद्भुत चित्र हैं।

अमूर्त देवियों में अदिति विशेष महत्व रखती हैं। अदिति शब्द का अर्थ ही बन्धनमुक्त है। वह विश्व की मंगल विधायक सर्वशक्तिमयी और आदित्यों की जन्मदात्री है। इसी के साथ दिति का भी उल्लेख है। वह सीमा का प्रतीक है, दैत्यों की माता नहीं। अन्य भी अमूर्त देवियाँ हैं।

अन्य प्राचीन संस्कृतियों के साथ उनकी देवदेवी सृष्टि भी नष्ट हो गई, किन्तु भारत में यह मूल या परिवर्तित रूप में आज भी स्थिति रखती है। इसका कारण इन प्रतीकों की व्यापकता ही मानी जायेगी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उषा, रात्रि, पृथ्वी, नदियाँ आदि अब तक हमारे साथ हैं तथा सृष्टि के अन्त तक रहेंगे, अतः उनके विलुप्त होने की आशंका नहीं है। विज्ञान उनका तत्वगत विश्लेषण कर सकता है, परन्तु मनुष्य से इनका जो भावगत सम्बन्ध है उसको तोड़ना विज्ञान के लिए दुष्कर है। जल के निर्णायक तत्वों को जान कर क्या मनुष्य तरंगिता सागर को देख कर आनन्दित होना भूल सकेगा ?

नारी का सामाजिक रूप उसके भावात्मक रूप से, उसी प्रकार प्रभावित होता है, जैसे वृक्ष के फल-फूल धरती की अन्तर्निहित आद्रता से।

वेदकालीन संस्कृति में नारी के व्यापक सौन्दर्य तथा सृजन शक्ति की जो दिव्य भावात्मक कल्पना की गई है, उसने उसकी सामाजिक स्थिति को भी गरिमा दी है।

सृष्टि में पुरुष तथा नारी की उत्पत्ति का एक ही केन्द्र है। बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि ब्रह्म ने एकाकी न रह कर अपने आपको दो में विभक्त कर लिया जिसके दक्षिण अंश को पुरुष तथा वाम को नारी की संज्ञा दी गयी।

इस मान्यता ने समाज में दोनों की स्थिति समान कर दी। इतना ही नहीं, आगे चल कर शिव के अर्द्ध नारीश्वर रूप में भी यह धारणा साकार हुई हैं।

युग विशेष में समाज की स्थिति जानने के लिये उसके शिक्षा, धर्म, साहित्य, सदस्यों के सम्बन्ध, अधिकार आदि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

शिक्षा की दृष्टि से वैदिक समाज में दो नारी-वर्ग प्राप्त होते हैं। एक में ब्रह्म-वादिनी ऋषिकायें तथा दूसरे में गृहधर्म का पालन करने वाली गृहणियाँ। शिक्षा प्राप्ति के अधिकार समान होने के कारण क्रान्तद्रष्टा ऋषियों के समान ही द्रष्टा ऋषिकाओं के सूक्त भी महत्वपूर्ण हैं। परन्तु दोनों की भावाधारा तथा कल्पना ने गंगा यमुना के धवल नील जल के समान मिल कर भी उनके सृजन को धूपछाँही आभा दे डाली है। विश्वारा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, श्रद्धा कामायनी वाक् अम्भ्रणी आदि ऋषिकाओं के सूक्तों में जीवन के प्रति जो आस्था तथा शक्ति मिलती है, उससे भारतीय संस्कृति पर अपने अमिट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्ह छोड़े हैं। पुरुष का वीतराग होना इतना अनिष्टकर नहीं सिद्ध होता, जितना जन्मदात्री के रूप में नारी का, इसी से प्रकृति ने उसे एक मोहक और अभिन्न रागात्मकता दी है।

श्रद्धा कामायनी के सूक्तों तथा ऋषि मनु के सूक्तों में अन्तर है। मनु में जहाँ चंचल जिज्ञासा है, वहाँ श्रद्धा में अडिग आस्था है।

उसके सूक्तों में घोषित हुआ है—"श्रद्धा द्वारा ही अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, श्रद्धा द्वारा ही आहुति दी जाती है।" श्रद्धा ही सब ऐश्वर्यों में श्रेष्ठ है। यह मैं स्पष्ट कहती हूँ। वाक के सूक्त में जिसे देवी सूक्त भी कहते हैं नारी की शक्ति का ऐसा उद्घोष मिलता है जिसमें आगामी युगों की शक्ति उपासना के भी अंकुर हैं।

अहं राष्ट्री संगमनी वसनां, अहं रुद्राय धनुरातनोमि आदि में वह कहती है :— मैं राष्ट्र को बाँधने और ऐश्वर्य देने वाली शक्ति हूँ। मैं ही रुद्र के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाती हूँ। मैं ही आकाश और पृथ्वी में व्याप्त होकर मनुष्य के लिये संग्राम करती हूँ। देवी सूक्त में महा सरस्वती, महालक्ष्मी और महाचण्डी शक्तियों का जो समाहार है उसने भारत की सभी साधना पद्धतियों को प्रभावित किया है।

दूसरा वर्ग नारी के पत्नी माता आदि रूप में सम्बन्ध रखता है।

विवाह समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है, क्योंकि इसी पर सामाजिक संबंध निर्भर करता है।

विवाह के अनुष्ठान में आज भी हम जिन मन्त्रों का उपयोग करते हैं वे उसी अतीत संस्कृति के प्रवाह में वह कर हम तक आये हैं।

वैदिक समाज रचना में पत्नी सहधर्मचारिणी है—उसके बिना न कोई धर्मकांड सम्पन्न हो सकता है न सामाजिक कर्म सफल हो सकते हैं। इतने निकट सहयोग ने एक और समाज को पुरुष का संरक्षण दिया और दूसरी ओर नारी की कोमल और मंगल विधायनी वत्सलता। स्त्री शिक्षित वयस्क और स्वयंबरा होती थी, इसका प्रमाण विवाह के अवसर पर की गई प्रतिज्ञाओं में मिलता है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समन्जन्तर्विश्वेदेवां समापो

हृदयानि नो आदि मन्त्रों में वरवधू के हृदयों में एकता की कामना भी है—और जीवन पर्यन्त साथ रहने की प्रतिज्ञा भी।

सती होने या सहमरण की प्रथा नहीं थी। आपस्तम्ब धर्मसूत्रों के अनुसार पत्नी पारिवारिक सम्पत्ति में सह-अधिकारिणी भी है और पति की अनुपस्थिति में उस सम्पत्ति में से दान का अधिकार भी रखती है।

शासन की व्यवस्था, सभा, समिति और विदथ द्वारा होती जिनमें भाग लेने और भाषण देने का भी नारी को अधिकार अध्यात्म विषयक वाद विवादों में भी वह भाग ले सकती थी, इसका प्रमाण गान, नृत्य आदि कलाओं, बुनने कातने जैसे शिल्पों का भी उसे शिक्षण दिया जाता था। विश्वपला का युद्ध में जाना या मुदगलानी का शत्रुओं से युद्ध करके सौ गाय छीन लाना प्रमाणित करता है कि नारी का कर्मक्षेत्र केवल गृह ही नहीं था। वह सन्तान की रक्षा से राष्ट्र की रक्षा तक फैला हुआ था। अतः भारतीय संस्कृति में कोमल कठोर दोनों तत्वों का यथास्थान समावेश स्वाभाविक था।

किन परिस्थितियों में नारी के इस अदिति रूप को बन्धन मिला यह आगामी युग की कथा है। पर ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी का स्वर आज भी भारतीय संस्कृति का अविस्मरणीय जीवन गीत है :—

असतो मा सद गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्यो माँ अमृत गमय

●●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५ | शिरीष के फूल

हजारीप्रसाद द्विवेदी

जहाँ बैठके यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे, पीछे, दायें, बायें, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुण्ड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गर्मी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल रहा हूँ। वे भी आस-पास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती। वह पन्द्रह-बीस दिन के लिए फूलता है, वसन्त ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पन्द्रह दिन के लिए लहक उठना पसन्द नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़ के खंखड़—'दिन दस फूला फूलि के खंखड़ भया साथ पलास'! ऐसे दमदारों से तो लँड़रे भले। फूल है शिरीष। वसन्त के आगमन से लहक उठता है, आषाढ तक तो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है जब ऊमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मन्त्र प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितान्त ठूँठ भी नहीं हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोल जरूर पैदा करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है (वृहत्संहिता ५५।३) अशोक आरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और वनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष-वाटिका जरूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने (कामसूत्र में) बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में ही झूला (प्रेंखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि वकुल के पेड़ ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है। डाल इसकी अपेक्षा-कृत कमजोर जरूर होती है, पर उसमें झूलने-वालियों का वजन भी तो बहुत ज्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम खयाल नहीं करते। मैं तुन्दिल नर-पतियों की बात नहीं कह रहा हूं, वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।

शिरीष का फूल संस्कृत साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरू-शुरू में प्रचार की होगी। उनका कुछ इस पुष्प पर पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गये हैं, शिरीष पुष्प केवल भौंरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता है, पक्षियों का बिलकुल नहीं—'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्।' अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ। सिर्फ विरोध करने की हिम्मत नहीं होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो इच्छा भी नहीं है। खैर, मैं दूसरी बात कह रहा था। शिरीष के फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फल इतने मजबूत होते हैं कि नये फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नये फल-पत्ते मिलकर धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसन्त के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार जमाने का रुख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती ? जरा और मृत्यु ये दोनों ही जगत् के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफसोस के साथ इनकी सचाई पर मुहर लगायी थी—'धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना !' मैं शिरीष के फलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा कि झड़न निश्चित है ! सुनता कौन है ? महाकाल देवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकणा थोड़ा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरन्तर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा जाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किये रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे।

एक-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी यह हजरत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पति शास्त्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमण्डल से अपना रस खींचता है। जरूर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था। अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ शिरीष के समान ही थे। मस्त और बेपरवाह, पर सरल और मादक। कालिदास भी जरूर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और मेघदूत का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किये-कराये का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गया, वह भी क्या कवि है ? कहते हैं कर्णाट-राज की प्रियाविज्जिका देवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे वाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को, तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं कर्णाट-राज की प्यारी रानी उनके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ—'तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाट-राजप्रिया !'' मैं जानता हूँ कि इस उपालम्भ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाये नहीं तो उसे डाँटा भी न जाय। मैं कहता हूँ कि कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखा। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो !

कालिदास वजन ठीक रख सकते थे; क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर प्रज्ञता और विदग्ध-प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है ? मैं भी छंद बना लेता हूँ तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छंद बना लेते थे—तुक भी जोड ही सकते होंगे—इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहृदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कवयः कवयः कववस्ते कालिदासाद्याः !' मैंने तो मुग्ध और विस्मय-विमूढ़ कहा था—'वयमपि होकर कालिदास ने एक-एक श्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुन्तला बहुत सुन्दर थी। सुन्दर क्या होने से कोई हो जाता है ? देखना चाहिए कि कितने सुन्दर हृदय से वह सौन्दर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुन्तला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं, राजा दुष्यन्त भी अच्छे-भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुन्तला का चित्र बनाया था, लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता था :—उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। वड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि शकुन्तला के कानों में वे उस शिरीष पुष्प को देना भूल गये हैं, जिसके केसर गण्डस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चन्द्र की किरणों के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥

कालिदास ने यह श्लोक न लिख दिया होता तो मैं समझता कि वे भी बस और कवियों की भाँति कवि थे, सौन्दर्य पर मुग्ध, दुःख से अभिभूत, सुख से गद्गद !! पर कालिदास सौन्दर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुःख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृषीवल की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदण्ड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान् थे क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिन्दी कवि सुमित्रानन्दन पंत में है। कविवर रवीन्द्रनाथ में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा है—'राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुन्दर क्यों न हो वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गन्तव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है। यही बताना उसका कर्तव्य है।' फूल हो या, पेड़ वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन—धूप, वर्षा आँधी, लू,—अपने-आप में सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों? मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों सम्भव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ, तब-तब हूक उठती है—हाय, वह अवधूत आज कहाँ है!

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७ | रजिया

रामवृक्ष बेनीपुरी

कानों में चाँदी की बालियाँ, गले में चाँदी का हैकल, हाथों में चांदी के कंगन और पैरों में चाँदी की गोड़ाई—भर बाँह की बूटेदार कमीज पहने, काली नाड़ी के छोर को गले में लपेटे, गोरे चेहरे पर लटकते हुए कुछ बालों को सँभालने में परीशान, वह छोटी-सी लड़की जो उस दिन मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी थी—अपने बचपन की उस रजिया की स्मृति ताजा हो उठी, जब, मैं भी उस दिन अचानक उसके गाँव में जा पहुँचा !

हाँ, यह मेरे बचपन की बात है। मैं कसाईखाने से रस्सी तुड़ाकर भागे हुए बछड़े की तरह उछलता हुआ कभी-अभी स्कूल से आया था और बरामदे की चौकी पर अपना बस्ता-सिलेट पटककर मौसी से छठ में पके ठेकुए लेकर उन्हें कुतर-कुतर कर खाता ढेंकी पर झूला झूलने का मजा पूरा करना चाह रहा था कि उधर से आवाज आयी—देखना, बबुआ का खाना मत छू देना—और उसी आवाज के साथ मैंने देखा, यह अजीब रूप-रंग की लड़की मुझसे दो-तीन गज आगे खड़ी हो गयी।

मेरे लिए यह रूप-रंग सचमुच अजीब था। ठेठ हिन्दुओं की बस्ती है मेरी और मुझे मेले-ठेले में भी अधिक नहीं जाने दिया जाता। क्योंकि सुना है, बचपन में मैं एक मेले में खो गया था, मुझे कोई औघड़ लिये जा रहा था कि गाँव की एक लड़की की नजर पड़ी और मेरा उद्धार हुआ। मैं माँ-बाप का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकलौता—माँ, चल बसी थी, इसलिए उनकी इस एकमात्र धरोहर को मौसी आँखों में जुगोकर रखती। मेरे गाँव में भी लड़कियों की कमी नहीं, किन्तु न उनकी यह वेश-भूषा; न यह रंग-रूप? मेरे गाँव की लड़कियाँ कानों में बालियाँ कहाँ डालतीं और भर बाँह की कमीज भी उन्हें कभी नहीं पहने देखा। और गोरे चेहरे तो मिले हैं, किन्तु इनकी आँखों में जो एक अजीब किस्म का नीलापन दीखा, वह कहाँ? और समूचे चेहरे की काट भी कुछ निराली जरूर—तभी तो मैं उसे एकटक घूरने लगा।

यह बोली थी रजिया की माँ, जिसे प्रायः ही अपने गाँव में चूड़ियों की खँचिया लेकर आते देखता आया था। वह मेरे आँगन में चूड़ियों का बाजार पसारकर बैठी थी और कितनी बहू-बेटियाँ उसे घेरे हुए थीं। मुँह से भाव-ताव करती और हाथ से खरीदारिनों के हाथ में चूड़ियाँ चढ़ाती वह सौदे पटाये जा रही थी। अब तक उसे अकेले ही आते-जाते देखा था, हाँ, कभी-कभी उसके पीछे कोई मर्द होता जो चूड़ियों की खाँची ढोता। यह बच्ची आज पहली बार आयी थी और न जाने किस बालसुलभ उत्सुकता ने उसे मेरी ओर खींच लिया था। शायद वह यह भी नहीं जानती थी कि किसी के हाथ का खाना किसी के निकट पहुँचने से छू जाता है। माँ जब अचानक चीख उठी, वह ठिठकी, सहमी—उसके पैर तो वहीं बँध गये, किन्तु इस ठिठक ने उसे मेरे बहुत निकट ला दिया, इसमें संदेह नहीं।

मेरी मौसी झट उठीं, घर में गयीं और दो ठेकुए और एक कसार लाकर उसके हाथों में रख दिये। वह लेती नहीं थी, किन्तु अपनी माँ के आग्रह पर हाथ में रख तो लिया, किन्तु मुँह से नहीं लगाया। मैंने कहा—खाओ न? क्या तुम्हारे घर में ये सब नहीं बनते? छठ का व्रत नहीं होता? कितने प्रश्न—किन्तु सबका जवाब 'न' में ही और वह भी मुँह से नहीं, जरा-सा गर्दन हिलाकर। और गर्दन हिलाते-हिलाते ही चेहरे पर गिरे बाल की जो लटें हिल-हिल उठतीं, वह उन्हें परीशानी से सँभालने लगती।

जब उसकी माँ नयी खरीदारिनों की तलाश में मेरे आँगन से चली, रजिया भी उसके पीछे हो ली। मैं खाकर, मुँह धोकर, अब उसके निकट था

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और जब वह चली, जैसे उसकी डोर में बँधा थोड़ी दूर तक घिसटता गया। शायद मेरी भावुकता देखकर चुड़िहारिनों के मुँह पर खेलनेवाली अजस्र हँसी और चुहल में उसकी माँ बोली—बबुआजी, रजिया से ब्याह कीजिएगा ? फिर बेटी की ओर मुखातिब होती, मुस्कुराहट में कहा—क्यों रे रजिया, यह दूल्हा तुम्हें पसन्द है ? उसका यह कहना, कि मैं मुड़कर भागा। ब्याह ? एक मुसलमानिन से ? अब रजिया की माँ ठठा रही थी और रजिया सिमटकर उसके पैरों में लिपटी थी, कुछ दूर निकल जाने पर मैंने मुड़कर देखा।

रजिया, चुड़िहारिन, वह इसी गाँव की रहने वाली थी। बचपन में इसी गांव में रही और जवानी में भी। क्योंकि मुसलमानों में गाँवों में ही शादी हो जाती है न ? और, यह अच्छा हुआ—क्योंकि बहुत दिनों तक प्रायः ही उससे अपने गाँव में ही भेंट हो जाया करती थी।

मैं पढ़ते-पढ़ते बढ़ता गया। बढ़ने पर पढ़ने के लिए शहर में जाना पड़ा। छुट्टियों में जब-तब आता। इधर रजिया पढ़ तो नहीं सकी, हाँ बढ़ने में मुझसे पीछे नहीं रही। कुछ दिनों तक अपनी माँ के पीछे-पीछे घूमती फिरी। अभी उसके सिर पर चूड़ियों की खँचिया तो नहीं पड़ी, किन्तु खरीददारिनों के हाथों में चूड़ियाँ पिन्हाने की कला वह जान गयी थीं। उसके हाथ मुलायम थे, बहुत मुलायम नयी बहुओं की यही राय थी। वे इसी के हाथ से चूड़ियां पहनना पसन्द करतीं। उसकी माँ इससे प्रसन्न ही हुई—जब तक रजिया पिन्हाती, वह नयी-नयी खरीदारिनें फँसाती।

रजिया बढ़ती गयी। जब-जब भेंट होती, मैं पाता उसके शरीर में नये-नये विकास हो रहे हैं। शरीर में और स्वभाव में भी। पहली भेंट के बाद पाया था, वह कुछ प्रगल्भ हो गयी है—मुझे देखते ही दौड़कर निकट आ जाती, प्रश्न पर प्रश्न पूछती। अजीब अटपटे प्रश्न—देखिए तो ये नयी बालियाँ, आपको पसन्द हैं ? क्या शहरों में ऐसी बालियाँ पहनी जाती हैं ? मेरी माँ शहर से चूड़ियाँ लाती है, मैंने कहा है, वह इस बार मुझे भी ले चले। आप किस तरफ रहते हैं वहाँ ? क्या भेंट हो सकेगी—वह बके जाती, मैं सुनता जाता। शायद जवाब की जरूरत वह भी नहीं महसूस करती।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फिर कुछ दिनों बाद पाया वह अब कुछ सकुचा रही है। मेरे निकट आने के पहले वह इधर-उधर देखती और जब कुछ बातें करती, तो ऐसी चौकन्नी-सी कि कोई देख न ले, सुन न ले। एक दिन जब वह इसी तरह बातें कर रही थी कि मेरी भौजी ने कहा, देखियो री रजिया, बबुआजी को फुसला नहीं लीजियो। वह उनकी ओर देखकर हँस तो पड़ी, किन्तु मैंने पाया, उसके दोनों गाल लाल हो गये हैं और उन नीली आँखों के कोने मुझे सजल-से लगे। मैंने ध्यान दिया, जब हम लोग कहीं मिलते हैं, बहुत-सी आँखें हम पर भालों की नोक ताने रहती हैं।

रजिया बढ़ती गयी, बच्ची से किशोरी हुई और अब जवानी के फूल उसके शरीर पर खिलने लगे हैं। अब भी वह माँ के साथ ही आती है, किन्तु पहले माँ की एक छाया मात्र लगती थी, अब उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है और उसकी छाया बनने के लिए कितनों के दिलों में कसमसाहट है! जब वह बहनों को चूड़ियाँ पिन्हाती है, कितने भाई तमाशे देखने को वहाँ एकत्र हो जाते हैं। क्यों? बहनों के प्रति भ्रातृत्वभाव या रजिया के प्रति एक अज्ञात आकर्षण वहाँ लाता है उन्हें। जब बहुओं के हाथों में चूड़ियाँ ठेलती होती है, पतिदेव दूर खड़े कनखियों से देखते होते हैं—क्या? अपनी नवोढ़ा की कोमल कलाइयों को, या उन कलाइयों पर क्रीड़ा करती हुई रजिया की पतली उँगलियों को? और, जैसे रजिया को इसमें रस मिलता है। पतियों से चुहलें करने से वह आज नहीं आती—बाबू, बड़ी महीन चूड़ियाँ हैं, जरा देखिएगा कहीं चटक न जाएँ। पतिदेव भागते हैं, बहुएँ खिलखिलाती हैं, रजिया ठट्ठा लगाती है। अब वह अपने पेशे में निपुण होती जाती है।

हाँ, रजिया अपने पेशे में भी निपुण होती जाती थी। चूड़िहारिन के पेशे के लिए सिर्फ यही नहीं चाहिए कि उसके पास रंग-बिरंग की चूड़ियाँ हों, सस्ती, टिकाऊं, टटके से टटके फैशन की। बल्कि यह पेशा चूड़ियों के साथ चूड़िहारिनों के बनाव-शृङ्गार, रूप-रंग, नाजो-अदा भी खोजता है जो चूड़ी पहननेवालियों को ही नहीं, उनको भी मोह सके, जिनकी जेब से चूड़ियों के लिए पैसे निकलते हैं, सफल चूड़िहारिन वह! यह रजिया की माँ भी किसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज़माने में क्या कुछ कम रही होगी—खँड़हर कहता, है इमारत शानदार थी।

ज्यों-ज्यों शहर में रहना बढ़ता गया, रजिया से भेंट भी दुर्लभ होती गयी। और, एक दिन वह भी आया, जब बहुत दिनों पर उसे अपने गाँव में देखा, पाया उसके पीछे एक नौजवान चूड़ियों की खाँची सिर पर लिये है। मुझे देखते ही वह सहमी, सिकुड़ी और मैंने मान लिया, यह उसका पति है। किन्तु तो भी अनजान-सा पूछ ही दिया—इस मजूरे को कहाँ से उठा लायी है रे?' 'इसी से पूछिए, साथ लग गया तो क्या करूँ?' नवजवान मुस्कराया, रजिया विहंसी, बोली—'यही मेरा खाविंद है मालिक है।'

खाविंद! बचपन की उस पहली मुलाकात में उसकी माँ ने दिल्लगी-दिल्लगी जो कह दिया था, न जाने वह बात कहाँ सोई पड़ी थी। अचानक वह जगी और मेरी पेशानी पर उस दिन शिकन जरूर उठ आयी होगी, मेरा विश्वास है। और एक दिन वह भी आया, कि मैं भी खाविंद बना। मेरी रानी को सुहाग की चूड़ियाँ पहनाने उस दिन रजिया आयी और उस दिन मेरे आँगन में कितनी धूम मचायी इस नटखट ने, यह लूंगी, वह लूंगी और ये मुंहमाँगी चीजें नहीं मिलीं, तो 'वह' लूंगी कि दुलहिन टापती रह जाएँगी। हट-हट बबुआजी को ले जायगी, तो फिर तुम्हारा यह हसन क्या करेगा—भौजी ने कहा। यह भी टापता रहेगा बहुरिया, कहकर रजिया ठट्ठा मारकर हँसी और दौड़कर हसन से लिपट गयी। ओ हो मेरे राजा, कुछ दूसरा न समझना। हसन भी हँस पड़ा। रजिया अपनी प्रेम-कथा सुनाने लगी। किस तरह यह हसन उसके पीछे पड़ा, किस तरह की झंझटें आयीं, फिर किस तरह शादी हुई और वह आज भी किस तरह छाया सा उसके पीछे घूमता है—न जाने कौन-सा डर लगा रहता है इसे। और फिर, मेरी रानी की कलाई पकड़-कर बोली—मालिक भी तुम्हारे पीछे इसी तरह छाया की तरह डोलते रहें दुल्हन! सारा आँगन हँसी से भर गया था। और उसी हँसी में रजिया के कानों की बालियों ने अजीब चमक भर दी थी—मुझे ऐसा ही लगा था।

जीवन का रथ खुरदुरे पथ पर बढ़ता गया—मेरा भी, रजिया का भी। इसका पता उस दिन चला, जब बहुत दिनों पर उससे अचानक पटना में भेंट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो गयी। यह अचानक बात तो थी, किन्तु क्या इसे भेंट कहा जाय।

मैं आजकल ज्यादातर घर से दूर-दूर ही रहता। कभी एकाध दिनों के लिए घर गया, शाम को गया, सुबह भागा, तरह-तरह की जिम्मेदारियाँ, तरह-तरह के जंजाल। इन दिनों पटना में था, यों कहिए, पटनासिटी में एक छोटे से अखबार में था, पीर-बावर्ची-भिश्ती की तरह। यों तो लोग समझते कि मैं सम्पादक ही हूँ। उन दिनों न इतने अखबार थे, न इतने सम्पादक। इसलिए मेरी बड़ी कदर है, यह मैं जानता। जब कभी दफ्तर से निकलता देखता, लोग मेरी ओर उँगली उठा के फुसफुसा रहे हैं। लोगों का मुझ पर यह ध्यान-मुझे हमेशा अपनी पद-प्रतिष्ठा का ख्याल रखना पड़ता।

एक दिन मैं चौक के एक प्रसिद्ध पानवाले की दुकान पर पान खा रहा था। मेरे साथ मेरे प्रशंसक नवयुवक थे, एक-दो बुजुर्ग भी आकर खड़े हो गये। हम पान खा रहे थे और कुछ चुहलें चल रही थीं कि एक बच्चा आया और बोला, बाबू, वह औरत आपको बुला रही है।

औरत, बुला रही, चौक पर! मैं चौंक पड़ा। युवकों में थोड़ी हलचल, बुजुर्गों के चेहरे पर की रहस्यमयी मुस्कान भी मुझसे छिपी नहीं रही। औरत कौन? मेरे चेहरे पर गुस्सा था, वह लड़का सिट-पिटाकर भाग गया।

पान खाकर लोग इधर-उधर चले, अचानक पाता हूँ, मेरे पैर उस ओर उठ रहे हैं जिस ओर उस बच्चे ने उँगली से इशारा किया था। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर पीछे देखा, परिचितों में से कोई देख तो नहीं रहा है। किन्तु इस चौक की शाम की रूमानी फिजा में किसी को किसी ओर देखने की कहाँ फुर्सत। मैं आगे बढ़ता गया और वहाँ पहुँचा, जहाँ उससे पूरब वह पीपल का पेड़ है। वहाँ पहुँच ही रहा था कि देखा, पेड़ के नीचे चबूतरे की तरफ से एक स्त्री बढ़ी आ रही है। और निकट पहुँचकर कह उठी—सलाम मालिक!

धक्का-सा लगा। किन्तु पहचानते देर नहीं लगी—उसने ज्यों ही सिर उठाया, चाँदी की बालियाँ जो चमक उठीं।

'रजिया! यहाँ कैसे?' मेरे मुँह से निकल पड़ा।

सौदा-पुलफ करने आयी हूँ मालिक! अब तो नये किस्म के लोग हो गये

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न ? अब लाह की चूड़ियाँ कहाँ किसी को भाती हैं। नये लोग, नयी चूड़ियाँ। साज-सिंगार की कुछ और चीजें भी ले जाती हूँ—पौडर, किलप, क्या-क्या चीजें न ? नया जमाना, दुल्हनों के नये मिजाज।

फिर जरा-सा रुककर बोली—सुना था, आप यहीं रहते हैं। कहाँ रहते हैं मालिक ? मैं तो अक्सर आया करती हूँ।

और जब तक पूछूं कि अकेली हो या……कि एक अधबयस आदमी ने आकर सलाम किया। यह हसन था। लम्बी-लम्बी दाढ़ियाँ, पाँच हाथ का लम्बा मुस्तंडा भी। देखिए मालिक, यह आज भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता ! यह कहकर रजिया हँस पड़ी। अब रजिया वह नहीं थीं; किन्तु उसकी हँसी वही थी। वही हँसी, वही चुहल। इधर-उधर की बहुत-सी बातें करती रही और न जाने कब तक जारी रखती कि मुझे याद आया, मैं कहाँ खड़ा हूँ और अब मैं कौन हूँ ? कोई देख ले तो।

किन्तु वह फुर्सत दे तब न। जब मैंने जाने की बात की, हसन की ओर देखकर बोली—क्या देखते हो, जरा पान भी तो मालिक को खिलाओ, कितनी बार हुमच-हुमचकर भरपेट ठूंस चुके हो बाबू के घर।

जब हसन पान लाने चला गयां, रजिया ने बताया, किस तरह दुनिया बदल गयी है। अब तो ऐसे गाँव हैं जहाँ के हिन्दू मुसलमानों के हाथ से सौदे नहीं खरीदते। अब हिन्दू चूड़िहारिनें हैं, हिन्दू दरजी हैं। इसलिए रजिया ऐसे खान्दानी पेशेवालों को बड़ी दिक्कत हो गयी है। किन्तु रजिया ने यह खुश-खबरी सुनायी, मेरे गाँव में यह पागलपन नहीं और मेरी रानी तो सिवा रजिया के किसी दूसरे के हाथ से चूड़ियाँ लेती ही नहीं।

हसन का लाया पान खाकर जब मैं चलने को तैयार हुआ, वह पूछने लगी, मेरा डेरा कहाँ हैं। मैं बड़े पसोपेश में पड़ा। डरिए मत मालिक, अकेले नहीं आऊंगी, यह भी रहेगा। क्या मेरे राजा—यह कहकर वह हसन से लिपट पड़ीं। पगली, यह शहर है शहर। यों……हसन ने हँसते हुए उससे बाहें छुड़ायीं और बोला, बाबू बाल-बच्चों वाली हो गयी, किन्तु इसका बचपना नहीं गया।

६—फा०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और दूसरे दिन पाता हूँ, रजिया मेरे डेरे पर हाजिर है। मालिक, ये चूड़ियाँ रानी के लिए—कहकर मेरे हाथों में चूड़ियाँ रख दीं। मैंने कहा, तुम तो घर पर जाती ही हो, लेती जाओ, वहीं दे देना।

नहीं मालिक, एक बार अपने हाथ से भी पिन्हा देखिए? वह खिलखिला पड़ी। और जब मैंने कहा—अब इस उम्र में। तो वह हसन की ओर देखकर बोली, पूछिए इससे, आज तक मुझे यही चूड़ियाँ पिन्हाता है या नहीं? और जब हसन कुछ शरमाया, वह बोली—घाघ है मालिक, घाघ, कैसा मुँह बना रहा है इस समय, लेकिन जब हाथ-में-हाथ लेता है···ठठाकर हँस पड़ी इतने जोर से कि मैं चौंककर चारों तरफ देखने लगा।

हाँ, तो अचानक उस दिन उसके गाँव में पहुँच गया। चुनाव का चक्कर, जहाँ न ले जाये, जिस औघट-घाट पर न खड़ा कर दे। नाक में पेट्रोल के धुएँ की गंध, कान में मायँ सायँ की आवाज, चेहरे पर गर्द-गुबार का अंबार—परेशान बदहवास, किन्तु उस गाँव में ज्यों ही मेरी जीप घुसी, मैं एक खास किस्म की भावना से अभिभूत हो गया।

यह-रजिया का गाँव है, यहाँ रजिया रहती थी। किन्तु क्या आज मैं यह भी पूछ सकता हूँ कि यहाँ कोई रजिया नाम की चूड़िहारिन रहती थी, या है? हसन का नाम लेने में ही शर्म लगती थी। मैं वहाँ नेता बनकर गया था। मेरा जय-जयकार हो रहा था, कुछ लोग मुझे घेरे खड़े थे। जिसके दरवाजे पर जाकर पान खाऊँगा, वह अपने को बड़भागी समझेगा। जिससे दो बातें कर लूँगा वह स्वयं चर्चा का विषय बन जायगा। इस समय मुझे कुछ ऊँचाई पर ही रहना चाहिए।

जीप से उतरकर लोगों से बातें कर रहा था, या यों कहिए कि कल्पना के पहाड़ पर खड़े होकर एक आने वाले स्वर्ण-युग का संदेश लोगों को सुना रहा था; किन्तु दिमाग में कुछ गुत्थियाँ उलझी थीं। जीभ अभ्यासवश एक काम किये जा रही थी, अन्तर्मन कुछ दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। दोनों में कोई तारतम्य न था, किन्तु इसमें से किसी एक की गति में भी बाधा क्या डाली जा सकती थी?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि अचानक, लो यह क्या ? वह रजिया चली आ रही है। रजिया ! वह बच्ची। अरे रजिया फिर बच्ची हो गयी ? कानों में वे ही बालियाँ, गोरे चेहरे पर वे ही नीली आँखें, वही भर बाँह की कमीज, वे ही कुछ लटें जिन्हें सम्हालती बढ़ी आ रही है। बीच में चालीस-पैंतलीस साल का व्यवधान। अरे, मैं सपना तो नहीं देख रहा ? दिन में सपना ? वह आती है, गव्वर ऐसी भीड़ में घुसकर मेरे निकट पहुँचती है, सलाम करती है और मेरा हाथ पकड़कर कहती है—चलिए मालिक मेरे घर।

मैं भौचक्का, कुछ सूझ नहीं रहा, कुछ समझ में नहीं आ रहा। लोग मुस्करा रहे हैं। नेताजी, आज आपकी क़लई खुलकर रही। नहीं। यह सपना है, कि कानों में सुनायी पड़ा, एक कह रहा है—कैसी शोख लड़की। और दूसरा बोलता है ठीक अपनी दादी जैसी। और तीसरे ने मेरे होश की दवा दी—यह रजिया की पोती है बाबू ! बेचारी पड़ी है। आपकी चर्चा अक्सर किया करती है। बड़ी तारीफ करती है ! बाबू फुर्सत हो तो जरा देख लीजिए न जाने बेचारी जीती है या—·

मैं रजिया के आँगन में खड़ा हूँ। ये छोटे-छोटे साफ-सुथरे घर, यह लिपा-पुता चिक्कन-ढुर-ढुर आँगन। भरी-पुरी गृहस्थी—मेहनत और दयानत की देन। हसन चल बसा है किन्तु अपने पीछे तीन हसन छोड़ गया है। बड़ा बेटा कलकत्ता कमाता है, मँझला पुश्तैनी पेशे में लगा है, छोटा शहर में पढ़ रहा है। यह बच्ची, बड़े बेटे की बेटी है। दादा का सिर पोते में, दादी का चेहरे पोती में। हूबहू रजिया—दूसरी रजिया मेरी उँगली पकड़े आँगन से पुकार रही है—दादी ओ दादी, घर से निकल, मालिक, दादा आ गये। किन्तु पहली रजिया निकल नहीं रही। कैसे निकले ? बीमारी के मैले-कुचैले कपड़े में मेरे सामने कैसे आये !

रजिया ने अपनी पोती को तो भेज दिया, किन्तु उसे विश्वास न हुआ कि हवागाड़ी पर आने वाला नेता अब उसके घर पर आने की तकलीफ कर सकेगा ? और जब सुना, मैं आ रहा हूँ, तो बहुओं से कहा, जरा मेरे कपड़े तो बदलवा दो—मालिक से कितने दिनों पर भेंट हो रही है न ?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसकी दोनों पतोहुएँ उसे सहारा देकर आँगन में ले आयीं। रजिया-हाँ, मेरे सामने रजिया थी। दुबली-पतली रूखी-सूखी। किन्तु जब नजदीक आकर उसने 'मालिक सलाम' कहा, उसके चेहरे से एक क्षण के लिए झुर्रियाँ कहाँ चली गयीं, जिन्होंने उनके चेहरे को मकड़जाला बना रखा था। मैंने देखा, उसका चेहरा अचानक बिजली के बल्ब की तरह चमक उठा और चमक उठीं वे नीली आँखें, जो कोटरों में धँस गयी थीं। और अरे चमक उठी हैं आज फिर वे चाँदी की बालियाँ और देखो, अपने को पवित्र कर लो, उसके चेहरे पर फिर अचानक लटककर चमक रही हैं वे लटें, जिन्हें समय ने धो-पोंछकर शुभ्र-श्वेत बना दिया है।

● ●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

८

बन्दी पिता का पत्र

पं० कमलापति त्रिपाठी

नैनी सेन्ट्रल जेल
ता०..........

प्रिय लालजी !

आज जेल में होली का उत्सव मनाया जा रहा है। मेरे कानों में अभी-अभी मंद किन्तु उल्लासभरी स्वर-लहरी टकरायी है जो कहीं पास के बैरक से प्रवाहित हो रही है। इन कैदियों के जीवन में आनंद, सुख और सन्तोष के लिए स्थान कहाँ है ? जो पशुओं की तरह पीसे जाते हैं, जो समाज से उपेक्षित हैं, जिनके लिए जगत् में कहीं सम्मानपूर्वक खड़ा होने का स्थान नहीं, जिनका भविष्य अंधकार में है और जिनमें बहुतों के जीवन के अनेक वर्ष यहीं समाधिस्थ हो गये, और जिनकी सूखी हुई हड्डियाँ और चिचुके चाम भी संभवतः यहीं गल-पच जायँगे। उनके लिए कहाँ है वसंत और कहाँ है सावन का मेघगर्जन ? यहाँ ऐसे प्राणी हैं जिनकी सारी जवानी इसी में कट गयी, बुढ़ापा यहीं आ गया और अब मौत भी संभवतः यहीं आकर उन्हें बंधनमुक्त करेगी। ऐसे लोगों की संख्या भी बहुत है जिन्हें यह भी पता नहीं कि उनके घर की क्या दशा है, अपने जिन बच्चों को वे छोड़ आये थे वे अब कैसे हैं। उनके घरवाले भी उन्हें भूल चुके हैं। वे यदि आज कहीं छूट कर जायँ और अपने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सौभाग्य से अपने बेटों से मिलें और अपनी बीवी के सामने खड़े हों तो शायद न बेटा बाप को पहिचानेगा और न बीवी अपने मियाँ को। क्या कभी कोई इसकी कल्पना भी कर सकता है कि इनके हृदय में भी रस का संचार होना सम्भव है ? क्या होली, क्या दीवाली किसी में यह सामर्थ्य कहाँ हो सकती है कि इनके हृदय के टूटे हुए तारों को जोड़ कर पुनः झंकृत कर दे।

पर लीलामय की महानटी प्रकृति ने मनुष्य को विचित्र प्राणी बनाया है। देखता हूँ कि मानव में सुख-दुख में सामंजस्य स्थापित कर लेने की अद्भुत प्रतिभा होती है। परिस्थिति उपस्थित होने पर किस सरलता के साथ वह अपने को उसके अनुकूल बना लेता है। उसके हृदय में स्वभावतः कितनी कला, कितना सन्तुलन और कितना धैर्य भरा पड़ा है। कदाचित् मनुष्य में यदि इसकी क्षमता न होती तो वह एक क्षण के लिए भी जीवन धारण करने में समर्थ न होता। मुझे तो ऐसा लगता है कि जगत अनंत दुःख और वेदना से ही परिपूर्ण है। प्रबल वेगवान् महान् कालनद के स्तर पर बुलबुले के समान अकस्मात् प्रकट हुए इस जीवन के अस्थायी अस्तित्व पर जरा ऊँचे उठकर दृष्टिपात करता हूँ तो सोचने लगता हूँ कि उसके कितने क्षण सुख और शांति में बीते हैं। मैं तो यदि खुर्दबीन भी लेकर खोजने की चेष्टा करता हूँ तो मुझे सुख, आनन्द और तृप्ति नाम का पदार्थ कहीं ढूँढ़े भी मिलता दिखायी नहीं देता। छोटे-से इस जीवन का अधिकतर भाग वेदना और पीड़ा में ही डूबा दिखायी देता है। हाँ, सुख के क्षण कभी-कभी आ जाते हैं जो बिजली की भाँति चमककर अन्धकाराच्छन्न पथ पर आलोक की आभा फेंककर मानो लुप्त हो जाते हैं। वह सुख नश्वर होता है, क्षणिक होता है, पर वे क्षण सत्य होते हैं जो जीवन में अपनी अमिट स्मृति छोड़ जाते हैं। यही स्मृति जीवन की शक्ति का स्रोत होती है। यही स्मृति निराशा में आशा, अन्धकार में प्रकाश और मृत्यु तथा विनाश में जीवन और निर्माण की रेखा बनी रहती है।

मानव-स्वभाव की यह विशेषता उसकी सबसे बड़ी विभूति है। उसी के बल पर भूख और यातना से पीड़ित, किसी सुदूर और उपेक्षित गाँव की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

झोपड़ी में पड़ा हुआ किसान, जब दिन-भर परिश्रम करने के बाद सायंकाल अपने बाल-बच्चों में आता है, और अपने हुक्के की निगाली मुँह में डालकर गुड़गुड़ शब्द करते हुए हृदय की आह धुएँ के साथ बाहर निकालता है, तब उसी में उस सुख और तृप्ति का अनुभव करता है जो उसे दूसरे दिन पुनः ठोकर खाने की शक्ति प्रदान करता है। यही विशेषता मनुष्य को मंगल मनाने का उत्साह प्रदान करती है। किसका जीवन है जो दुःखों से आकीर्ण न हो, समाज का कौन-सा अंग है जो अतृप्ति और अभाव का अनुभव न करता हो? फिर भी मनुष्य को इसी जीवन और इसी जगत् से इतना मोह होता है! चलते हुए पारे के बिखेरे कन के समान छिटके हुए सुख के क्षणों को बटोर लेने के असंभव प्रयास में जीवन कितने दुख, कितनी वेदना और कितनी यातनाओं का भार सहन करने के लिए तैयार हो जाता है, यह देखकर क्या आश्चर्य नहीं होता? पर आश्चर्यमयी तो यह दुनिया है ही!

फलतः कैदियों को होली के उत्साह में मस्त देख रहा हूँ। उन्होंने डफली बनायी है, घुंघरू बनाये हैं और फटे-पुराने चिथड़ों को एकत्र कर उन्हें रँगा है। अपनी बैरकों से बाहर निकलकर वे स्वाँग रच रहे हैं, फगुआ गा रहे हैं और कोई-कोई घुँघरू पहिन कर नाच रहे हैं। इन अभागे बंदियों का उल्लास और उन्माद दर्शनीय है। स्वतन्त्र वायु और निर्मुक्त अनंत आकाश से भी वंचित होकर ये जीवन को कुछ क्षण के लिए मोहक और आकर्षक बनाने में सफल हुए हैं। आज होली न आयी होती तो इन्हें इतना भी नसीब न हुआ होता। त्योहारों की ऐसी उपयोगिता का पहले कभी आभास भी मुझे नहीं मिला था। होली के साथ न जाने कितना इतिहास जुड़ा हुआ है? मैंने कहीं पढ़ा था कि हजारों वर्ष पूर्व वैदिक युग में आर्य बड़े उत्साह और धूमधाम से वसंतोत्सव मनाया करते थे। इन उत्सवों को 'समन' कहा जाता था जिसका उल्लेख और वर्णन वेदों में मिलता है। खेल-कूद, नाच-रंग, नाटक, घुड़दौड़, रथों की दौड़ आदि तरह-तरह के उत्सवों में स्त्री-पुरुष सब भाग लेते, दिन-दिन, रात-रात खेल-तमाशे हुआ करते और कई दिनों तक होते रहते। वेदों में इस उत्सव के आकर्षक वर्णन मिलते हैं। पुरातन आर्यों में स्त्रियों को बड़ी स्वतं-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रता थी। उस समय युवती कन्या स्वयं अपने पति का वरण कर लेती थी। कहते हैं, इन उत्सवों में ऐसे स्वयंवर बहुत होते थे। लड़के-लड़की परस्पर मिलते और उनमें से जो विवाह-बंधन में आबद्ध होना चाहते उनके माता-पिता उनकी इच्छा के अनुसार वही कर देते। 'समनोत्सवों' की यही बड़ी भारी उपयोगिता थी। न जाने कितनों के जीवन और हृदय का सम्मिलन कराने का पुण्य इस 'समन' को प्राप्त हुआ होगा।

हमारा होलिकोत्सव शायद उस प्राचीन समनोत्सव का ही विकसित रूप है। हजारो वर्षों से होने वाले इस उत्सव के साथ न जाने कितनों के हृदय का उल्लास, उनकी कामना, उनकी मधुर कल्पना और उनकी भावुकता मिली हुई है। न जाने कितनों के जीवन में इसने किसी कोमल स्मृति की वह चिन-गारी जला कर छोड़ दी है जो अपनी अखंड ज्योति से उसे सतत दीप्त करती रहती है। यमुना के तट पर मनोहर निकुंजों में श्याम ने गोपिकाओं के साथ होली खेली थी। सहस्राब्दियों पूर्व वहाँ जो रसधारा प्रवाहित हुई थी वह आज तक सूखी नहीं और कदाचित् तब तक न सूखेगी जब तक मनुष्य मनुष्य है। उस चिरंतन रसधार का उद्गम है मनुष्य का हृदय और उसकी अनुभूतियाँ, जो आज भी श्याम के होलिकोत्सव की गाथा में अपने ही प्रति-बिम्ब का दर्शन करती हैं। होली की यह महत्ता तो मैं समझता था पर आज उसकी जो उपयोगिता दिखायी दी, उसकी कल्पना भी पहले कभी नहीं की। इन आबद्ध प्राणियों को थोड़ी देर के लिए उसने बंधनमुक्त करके अपनी सार्थकता सिद्ध कर दी है। मेरी आँखों के सामने मैदान में उन्होंने धूम मचा रखी है। मालूम होता है कि वेग से बहती नदी का बाँध जैसे टूट गया हो उनके गान में न वेदना का राग है, और न नृत्य और अभिनय में उदासीनता की काली छाया। बंधनयुक्त जीवन में कल्पित स्वतंत्रता का यह क्षण क्या उनके लिए सत्य नहीं है? कौन उसे असत्य कहने का साहस करेगा? फिर कैदियों का झुमड़ झूम-झूमकर इस सत्यासत्य मिश्रित जीवन का उपभोग क्यों न करे?

पर कैदियों के इस प्रदर्शन का दर्शन करने में मैं अपने को भूल गया। मैंने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आज महीनों बाद लेखनी उठायी थी। होली ने प्रातःकाल से ही तुम लोगों की ओर मुझे आकृष्ट कर रखा है। आज तुम लोगों का उत्साह, विनोद और क्रीड़ा अपनी सीमा पार कर जाती थी। सब बच्चे मिल-जुलकर जो धूम मचाते थे, जो रंगबाजी और हल्ला-गुल्ला होता था वह यहाँ बैठे-बैठे याद कर रहा हूँ। समय तुम लोगों का उत्पात देखकर झुंझलाता था, उलझ पड़ता था और अकसर डाँट भी सुना देता था। आज कहीं हृदय के कोने में उसी उत्पात और होहल्ले को देखने और सुनने की टीस सी हो रही है। पर टीस का समाधान करने का उपचार तो मैंने खोज ही निकाला है। अपने कागज के चिथड़े और टूटी हुई कलम उठायी और बैठ गया। महीनों से कुछ लिखा नहीं था, दूसरी घटनाएँ मन की धारा को दूसरी ओर खींच ले गयी थीं। एक दिन बैठे-बैठे सुनायी पड़ा कि गांधीजी ने इक्कीस दिन का उपवास कर दिया है। समाचार क्या, मानो अकस्मात् वज्रपात हुआ था। सैकड़ों की संख्या में बन्द राजबन्दी ऐसे स्तब्ध हो गये मानो उन्हें काठ मार गया हो। फिर तो १० फ़रवरी से ३ मार्च तक का समय ऐसे कटा कि उसका वर्णन करना कठिन है। भयावनी आशंका और भीषण विक्षोभ के दिन थे। हर क्षण यही भय रहता था कि कहीं अशुभ समाचार सुनने को न मिल जाय। मन की गति को क्या कहूँ? एक ओर समाचार सुनने में त्रास होता था, इच्छा होती थी कि कोई भी संवाद न आवे तभी अच्छा, और दूसरी ओर प्रतिक्षण यही कामना रहती कि कुछ समाचार मिले। अद्भुत अन्तर्द्वन्द्व था। विचित्र खींचातानी और कशमकश थी।

ब्रिटेन की साम्राज्यवादिनी सरकार की निष्ठुरता हृदय में आग लगाये हुए थी। अपनी असाह्यावस्था झुंझलाहट पैदा कर रही थी और इस महान् देश के करोड़ों नर-नारियों की नपुंसकता लज्जा का उद्रेक कर रही थी। हम सोचते कि गांधीजी बिकट संकट में फँस गये। वे उन लोगों में हैं जो अपनी प्रतिज्ञा से डिगना नहीं जानते, चाहे शरीर के टुकड़े-टुकड़े क्यों न उड़ जायँ। उनमें विदेहत्व का आदर्श सजीव रूप में मूर्तिमान हो चुका है। आदर्श और सत्य के लिए उस व्यक्ति की दृष्टि में न जीवन का कोई मूल्य और न जगत् का! पर दूसरी ओर स्वार्थ में अंधे हुए कठोर हृदय साम्राज्यवादियों की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्ता देखी, जिसमें नर रक्त-पान करते-करते मनुष्यता नाम के किसी पदार्थ की छाया भी नहीं रह गयी है। भय होता, भय नहीं विश्वास था कि यदि कहीं वह अशिव मूहूर्त आ ही गया जब गांधीजी की भौतिक देह इस तप के बोझ को सहन करने में असमर्थ होती दिखायी देगी तो उस समय भी वे मानवता की इस विभूति और पृथ्वी के इस अमूल्य रत्न को नष्ट कर देने में आगा-पीछा न करेंगे। आखिर वे तो मनुष्य ही थे जिन्होंने ईसा के तपःपूत शरीर में लोहे की कील ठोंक कर प्रसन्नता और संतोष प्राप्त किया था। यदि इतिहास उसी की पुनरावृत्ति करे तो उसे कौन रोक सकेगा?

हम अनुभव कर रहे थे कि आज गांधी नहीं मर रहा है बल्कि उसके साथ वह आदर्श और वह सत्य मर रहा है जिसका प्रतिनिधित्व वह कर रहा है और जिसका दिव्य सन्देश लेकर यह देवदूत अवनि पर अवतीर्ण हुआ है। प्रश्न उठता कि क्या मानव के चरम कल्याण की इच्छा और उसके लिए चेष्टा करना ही कोई जघन्य अपराध है जिसके लिए इतना भयानक दण्ड मिल रहा है। यदि मानव समाज को संहार से, विनाश से और पाप से बचाना है तो उसकी समस्त व्यवस्था को अहिंसा के आधार पर स्थापित करने का आयोजन करना ही होगा। लोग कह देते हैं कि अहिंसा मानव प्रवृत्ति के प्रतिकूल है और कभी हिंसा का उन्मूलन सम्भव नहीं है। वे इतिहास को गलत ढंग से देखते हैं। वे यह नहीं देखते की विकास-पथ का पथिक मानव सदा आरम्भिक प्रवृत्तियों मे युद्ध करता, उनका संयम और नियन्त्रण करता ही आगे बढ़ता चला गया है। उसकी यही साधना संस्कृतियों को जन्म देती रही है। विचार करो तो देखोगे कि मानवता का इतिहास इस परम साधना का ही इतिहास है। सहज प्रवृत्तियों का उन्मूलन मनुष्य नहीं कर सकता पर उन प्रवृत्तियों को व्यवस्थित करना, उन पर कला का रंग चढ़ाना, उन्हें नियन्त्रित करना, उनकी धारा को अधिक उन्नत पथ की ओर मोड़ना और उसे सुसंयमित करना न केवल उसकी शक्ति में है बल्कि इसी का प्रयास वह सदा से करता है। समाज की रचना इसी प्रयास का परिणाम है। संस्कृतियों का विकास इसी तपस्या का फल है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फलतः हिंसा और स्वार्थ का उन्मूलन भले ही न हो पर उस दिशा की ओर तो मनुष्य बढ़ता ही जायगा। जैसे हिंसा उसकी सहज प्रवृत्ति है वैसे ही उसके संयम करने की प्रवृत्ति भी प्रकृति ने सहज ही उसे प्रदान की है। मानव का यह द्वन्द्वात्मक स्वरूप ही उसकी विशेषता है। गांधी ऐसा व्यक्ति उसी की ओर संकेत करता है। आज उसकी असफलता न केवल भारत के लिए बल्कि समस्त मानव-समाज के लिए अभिशाप के सदृश होगी। वह असफलता गांधी की असफलता नहीं बल्कि मानवता की पुनीत साधना की असफलता होगी। वह होगा उसके विकास-पथ का अवरोधन, जो उसकी गति को रुद्ध कर देगा। फिर तो गतिहीन मानव न केवल अपने प्रयोजन से भ्रष्ट होगा बल्कि विनाश के मुख में समा जायगा। हम इसी दृष्टि से इस समस्या पर विचार कर रहे थे और निराश हो रहे थे। उन इक्कीस दिनों की अपनी आंतरिक वेदना का क्या वर्णन करें। 'आज गांधी की हालत खराब है,' 'डाक्टर उनके जीवन से निराश हो रहे हैं' आदि समाचार सुन-सुनकर कलेजा फट जाता। सोचता कि यदि गांधी मरा तो उसके शव पर खड़ी भारत की पराधीनता उस भयावनी विभीषिका का रूप ग्रहण करेगी जो ब्रिटेन और भारत के भविष्य को सदा के लिए नहीं, तो कम से कम शताब्दियों के लिए अंधकाराच्छन्न कर देगी। पर असहाय स्थिति में हम कर ही क्या सकते थे ?

एक विश्वास था गांधीजी की तपस्या में और दूसरा भरोसा था भगवान् का। बहुतों ने व्रत किया, बहुतों ने अपने ढङ्ग से अपने भगवान् की शरण ली। बहुतों ने आँसुओं की धारा प्रवाहित कर हृदय का दाह मिटाया। सारे राष्ट्र की सामूहिक इच्छा-शक्ति ने आखिर उन्हें बचा ही लिया। तीन सप्ताह का वह बोझ समस्त स्नायु-तंतुओं को विघटित कर देने का कारण हुआ। फलतः न कुछ लिखना चाहता था, न पढ़ना और न सिवाय उन बातों के कुछ सोचना। इस प्रकार आज कई सप्ताह बाद पुनः लिखने की इच्छा हुई। इस होली ने ही उस इच्छा को जन्म दिया। पर जहाँ लिखने की इच्छा हुई वहीं पुनः पुराना प्रश्न मन में उठ खड़ा हुआ। मैंने बैठे-बैठे यहाँ कागज पर कागज रँगता जा रहा हूँ और इन पत्रों का ढेर लगाता जा रहा हूँ, पर मन में आता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है कि क्या इसका कुछ उपयोग भी है ? क्या कभी ये पत्र यहाँ से बाहर निकल-कर तुम तक पहुँच भी सकेंगे ? यदि पहुँच भी जावें तो इनसे क्या तुम्हारा कुछ लाभ भी होगा ? इनसे तुम्हारा और कुछ नहीं तो क्या मनोरंजन भी सम्भव है ? ये प्रश्न जब उठते हैं तब मन बैठ जाता है। सोचने लगता हूँ कि व्यर्थ ही क्यों कलम घिसूं ? इन पत्रों में कोई तरतीब या व्यवस्था तो है नहीं, मेरे एकाकी और जेल के नीरस जीवन में उठने वाले विचार हीं तो पंक्तिबद्ध हैं। फिर इनसे तुम्हारा लाभ ही क्या होगा ? आशा-निराशा, सुख और दुख के अनेक घात-प्रतिघात से जीवन बना करता है। किसी पर इन पंक्तियों का कुछ असर होता है और किसी पर कुछ दूसरा। ऐसा ज्ञात होता है कि मैं धीरे-धीरे मन से और प्रवृत्ति से कुछ अकेला सा हो गया हूँ। जिनके जीवन का मूल एकाकित्व की यह प्रवृत्ति होती है उनके लिए कुछ विशेष उपादानों की आवश्यकता होती है। मुझे ऐसा लगता है कि वे उपादान यदि उस व्यक्ति को प्राप्त न हों तो उसका जीवन कुछ प्रेरणाहीन हो जाता है। उसे अपना ही जीवन तथा जगत् भी कुछ शून्य सा दिखायी देने लगता है। मेरे सम्बन्ध में वे उपादान क्या हैं, यह जानने की न तुम्हें जरूरत है और न मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहना ही है। मैंने इतनी बातों का उल्लेख भी केवल यह बताने के लिए किया है कि इन पृष्ठों में जो लिखा है उस पर मेरे अंतःकरण की स्थिति और उसके रङ्ग का पुट चढ़ा हुआ है। अपनी ओर देखते हुए, यहाँ के शांत और एकांत वातावरण में बैठकर; भावों को जब उन्मुक्त बहने देता हूँ तब वे अपने स्वाभाविक मार्ग का अनुगमन करते हैं।

इस स्थिति में आज उनका विशेष मूल्य तुम्हारे लिए नहीं हो सकता, यह अच्छी तरह जानता हूँ। पर उन विचारों में किसी की अनुभूति घुली-मिली है। किसी दिन वे तुम्हारी समझ में अवश्य आवेंगे, यह भी मेरा विश्वास है। यही जब मन में आता है तब पुनः लिखने की इच्छा होने लगती है और मन में भाव उठता है कि यह बिलकुल अकारथ और व्यर्थ नहीं है। फिर मुझे तो संतोष हो जाता है और मेरा समय कट जाता है वह ऊपर से। एक बात और लिख दूँ। मैं समझता हूँ कि इन पत्रों को लिखने के लिए मैंने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्बोधन अवश्य किया है पर जब अन्तर में प्रवेश करके देखता हूँ तब ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में पत्र लिख रहा हूँ अपने को ही। कदाचित् मनुष्य जो भी लिखता है सब अपने को ही लिखता है, फिर सम्बोधन चाहे जिसका करे। अपनी ही भावना, अपने ही विचार, अपनी कल्पना की अभि-व्यक्ति अपने लिए ही करता है, जिस पर उसी के अन्तःकरण की छाप लगी रहती है। ऊपर से वह चाहे जिसे अपने सम्मुख रखकर अपने लिखने का पात्र बनावे, पर भीतर अपने अवचेतन मन में वह स्वयं ही आसीन रहता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि ये पत्र केवल तुम्हारे लिए नहीं, प्रत्युत मेरे लिए भी लिखे गये हैं और हम दोनों का इससे कुछ प्रयोजन भी सिद्ध हो सकता है।

जीवन में जो अनुभूतियाँ मुझे हुई हैं और जिन समस्याओं के चक्र से मुझे पार होना पड़ा है, वैसी अनुभूतियाँ और समस्याएँ तुम्हारे जीवन में भी उपस्थित हो सकती हैं। उनका जो प्रभाव मेरे ऊपर हुआ है, वही प्रभाव तुम्हारे ऊपर भी हो सकता है। जीवन का जो स्वरूप मेरी समझ में अपने अनुभव और प्रेक्षण से भासा है, सम्भव है, कुछ वैसा ही भास समय आने पर तुम्हें भी हो, पर मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं कि ऐसा होना अनिवार्य ही है। जगत् के अनेक प्राणियों में जीवन विभिन्न है, उनका अलग व्यक्तित्व है और उनकी अलग-अलग अनुभूतियाँ होती हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब लोग संसार को एक ही दृष्टिकोण से देखें। मैं तो मानता हूँ, जितने मुँड हैं उतने ही दृष्टिकोण भी हो सकते हैं, उतनी ही विभिन्न प्रकार की अनु-भूतियाँ। पर ऐसा होते हुए भी मेरी समझ में यह आता है कि विभिन्नता-मय इस दृश्य जगत् के मूल में किसी प्रकार की अभिन्न धारा अवश्य प्रवाहित है जो अदृश्य होते हुए भी सब को एक सूत्र में पिरोये हुए है।

इस प्रकार तुम्हारे सम्बन्ध में विचार करते हुए आज मैं तुम्हारे बहुत निकट पहुँच गया हूँ। मेरे मस्तिष्क में विचारों का जंगल-सा उठ खड़ा हुआ है। बहुत-सी बातें इसी सिलसिले में मन में उठ रही हैं, उन्हें लिख डालना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाहता हूँ पर देखता हूँ कि पत्र का कलेवर बहुत बढ़ गया है। फलतः इसे तो यहीं समाप्त करता हूँ किन्तु दूसरे का आरम्भ भी तत्काल कर दूँगा। अवश्य ही वह आरम्भ कल होगा। आज उन विचारों को लेकर ही शयन करूँगा। विश्राम के बाद समझता हूँ कि विचारों का प्रकटीकरण भी अधिक व्यवस्थित ढङ्ग से हो सकेगा।

तुम्हारा

बाबू

● ●

CC0..In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डायरी

९ | अकेलापन और पार्थक्य

गजानन माधव मुक्तिबोध

कभी-कभी ऐसा भी होता है, मन अपने को भूनकर खाता है। आज कई रोज से इसी तरह की बेचैनी दिल में घर किये रही। किसे कहें। क्या कहें! तबीयत होती है, बहुत-बहुत तबीयत होती है कि ऐसा देशी-विदेशी साहित्य हाथ में आ जाय, जिसके द्वारा मेरी अपनी समस्याओं पर कुछ प्रकाश पड़े, कुछ राहत मिले, कोई मार्ग प्राप्त हो। कोई ऐसा उपन्यास पढ़ने को मिल जाय, जिसमें मेरी-जैसी समस्यावाले व्यक्ति का चरित्र अंकित किया गया हो। सम्भव है उस लेखक के विचार मेरे काम के निकलें। लायब्रेरियों में जाता हूँ, किताबें टटोलता रहता हूँ, कुछ पूरी पढ़ता हूँ, कुछ आधी पढ़कर वापिस कर देता हूँ। हाँ, यह एक आत्मग्रस्त शोध है। ऐसा कहीं कोई भी मिलने का, जो मेरी समस्याओं जैसी समस्याओं और मेरे स्वभाव—जैसे स्वभाव पर कोमल किन्तु तीव्र प्रकाश डाले, उन्हें मूर्त करे, और नाजुक तरीके से; हल्के से, बस यूँ ही, इत्मीनान दिला दे और रास्ते चलते मुझे भी रास्ता बता दे। बस, एक गुरु की, एक मार्गदर्शी मित्र की, प्यार-भरे सलाहकार की बड़ी जरूरत है, बहुत बड़ी। उससे बहस की जा सके, ऐसा अवसर हो।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह सन्देह के परे है कि विभिन्न युगों में और विभिन्न देशों में यूरोप और अमरीका में, चिली में और जापान में, सेन फ्रांसिस्को में और मास्को में, लन्दन में और प्राग में , दिल्ली में और तिरुवांकुर में—मेरी-जैसी समस्याओं वाले और मेरे-जैसे स्वभाव वाले एक नहीं अनेकों हुए होंगे। कोई मुझे उनका लिखा उपन्यास ला दे, या कोई निबन्ध। कविता भी चल जायेगी। यह जरूरी नहीं है कि वह आधुनिकतावादी हो। आधुनिकतावादियों को मैंने देख लिया है। उनमें दम नहीं है, वे पोच हैं। वे समस्या को बड़ा करके बताते हैं, आदमी को छोटा करके नचाते हैं। वह भी एक स्वांग है।

आज कई दिनों से एक विचित्र मनःस्थिति से गुजरता रहा था। भयानक आत्म-ग्लानि ने घर कर लिया। मैं क्या हो सकता था, लेकिन नहीं हुआ। मेरे विकास के सम्भावित विकल्प खड़े हो गये। और मैंने पाया कि वह महान् आत्मशक्ति मुझमें नहीं जो मुझसे पूर्ण रूपान्तर उपस्थित कर दे, मैं क्या-का-क्या हो जाऊँ। मैं अपने खुद के कन्धों पर चढ़ जाना चाहता हूँ, आकाश छूना चाहता हूँ, चाहे उस आकाश में हाइड्रोजन-अणु का धुआँ ही क्यों न हो। मैं पृथ्वी के पेट में घुस जाना चाहता हूँ, चाहे उस विवर में नायट्रोन बम के विस्फोटात्मक प्रयोग ही क्यों न होते हों।

और ऐसे ही किन्हीं भयानक क्षणों में मैंने कविता लिख दी। कविता लिखते समय कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। विश्वास नहीं हो सका कि मैं अपने मन का सब कुछ उसमें डाल रहा हूँ या नहीं (बहुत दिनों बाद मैंने जब उसे एक पहुँचे हुए मर्मज्ञ को सुनाया, तो उसे वह बहुत अच्छी लगी), किन्तु कवितालिखने के बाद यह जरूर लगा कि पूरे रंग नहीं उभर पाये हैं। अगर चाहता तो मैं उस कविता को और भी घनीभूत और भी भयानक और भी पूर्ण बना सकता था। लेकिन मैंने कलम छोड़ दी।

ज्यों-ही मैं काम खत्म कर, टेबिल छोड़ नीचे दरी पर आ बैठा, पैर फैला दिये और मन को सूना और ढीला कर दिया, यह सोच कर कि चलिये कविता से छुट्टी मिली और छुटकारा मिला, त्यों-ही-मन ने चाहा कि उसको

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक बार फिर पढ़ लिया जाये। यद्यपि थका हुआ था, मैं फिर भी काम करने लगा। थोड़ा संशोधन। थोड़ा उलट-फेर। किन्तु, इतना हुआ ही था कि कविता के भीतर समायी कविता विशालतर हो उद्घाटित होने लगी। उद्घाटित होते हुए और भी विस्तृत होने की सम्भावना सामने उपस्थित होते ही, मैंने फिर कलम छोड़ दी। उस कविता के प्रति एक भयानक क्रोध, एक विनाशक (उत्तेजना) से सिर उठ.या। लेकिन मैंने पिन लगाकर उसे एक ओर डाल दिया। फिर दरी पर जाकर लेट गया।

लेकिन मुझे आराम नहीं मिला। दिमाग चलने लगा वह साइकिल पर चढ़कर, काली सुरंगों में घुसने का यत्न करने लगा। भयानक आलोचना चल पड़ी।

तत्काल अनुभव हुआ कि वीरान अमानवीय दूरियाँ मुझे घेरे हुए हैं। आदिम प्रज्ज्वलनशील द्रव्य का एक पुंजीभूत तारा, जो सिर्फ दूरियों के बीच जलता हुआ चलता है! यह पार्थक्य घनघोर है। यह मेरा किया नहीं है। मैं इस पार्थक्य का विधाता नहीं। वह मेरे जमाने की बदनसीबी है। जिस चबूतरे पर मैं खड़ा हूँ, उसके पाये का यह पाप है! आज से दस-बीस साल पहले यह कहा जाता था कि कलाकार हमेशा अकेला होता है। इस पर मेरी टिप्पणी केवल इतनी ही है कि हर आदमी को, सोचने विचारने के लिए, मनो-मन्थन के लिए, एकान्त चाहिए, जिसमें केवल वह ही वह हो और कोई न हो। कलाकार का जीवन चूंकि अधिकतर मनोमय है (व्यस्त रहते हुए भी) इसलिए मुझे एकांत आवश्यक है। अपने मनोमय जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अकेला होता है। यह स्वभाव सिद्ध है। अकेलापन और पार्थक्य में अन्तर है।

लेकिन आप पार्थक्य को, इस अलगाव को, क्या कीजियेगा? मेरे बहुत-से दोस्त भोपाल में, जबलपुर में, रायपुर में, दिल्ली में, इलाहाबाद में, बनारस में, बम्बई में, उज्जैन, इन्दौर में, अजमेर में—और न मालूम कितनी ही जगह में है—यहाँ तक कि कुछ पाकिस्तान में भी हैं। मेरा अनुमान है कि जिस पार्थक्य का मैं अनुभव करता हूं, सम्भव है, वे भी उसी का करते होंगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह बिलकुल सही है कि पार्थक्य को दूर करने के लिए जिस सहानुभूतिपूर्ण गहरी मनुष्यता की आवश्यकता है, वह शायद मुझसे नहीं है न केवल अपनी वरन् अन्यों की भीतरी रोक को दूर करके उनके दिल के खुलने की हालत में पैदा कर देना एक बड़ी चीज है। मुझे कहने दीजिए कि आजकल आदमी में दिलचस्पी कम होती जा रही है। सामान्यीकरणों के अरूप समुदाय बढ़ रहे हैं। कविता के तत्वों का विश्लेषण, रचना-प्रक्रिया का मन्थन, खूब चल रहा है, कविता खुद फटेहाल हो रही है। यह सब-मेरे लेखे-पार्थक्य के कारण है।

शायद मैं गलती कर रहा हूँ! यह पार्थक्य का परिणाम नहीं, वह किसी अन्य कारण से हो। बहरहाल, यह सही है कि आदमी में और उसकी जिन्दगी में दिलचस्पी कम होना अच्छी बात नहीं। वह दुहरा दण्ड है, स्व को भी, पर को भी। मैं इसी से पीड़ित हूँ। व्यावहारिक जीवन के वास्तविक क्षेत्र में जितनी गहरी मनुष्यता की आवश्यकता है, शायद वह मुझमें नहीं। और भी पार्थक्य, घनघोर पार्थक्य। इसीलिए हमेशा चाहते हुए भी, संवेदनशील गद्य-उपन्यास न लिख सका। कविता पर उतर आया। लेकिन नहीं, कदाचित् यह आत्मालोचन भ्रामक है।

एक जमाना था, जब मैं यह सोचता था कि जीवन की विभिन्न महत्वपूर्ण मानवीय सामाजिक क्रियाओं का मैं अंश हो जाऊँ, उन प्रक्रियाओं के केन्द्र का हिस्सेदार बनकर उस केन्द्र की सारी ऊष्मा को, सारे द्वन्द्व को, उसकी सारी समस्याओं और प्रेरणाओं को, आत्मसात कर लूँ। उस क्रिया के केन्द्र की सारी चिनगारियों से सुलगता हुआ मैं आगे बढ़ूँ। मेरे लेखे, जीवन का सर्वोच्च आनन्द इसी में है। किनारे पर रहकर तटस्थ रहकर (डिसएनगेज्ड रहकर; अनकमिटेड रहकर) जिन्दगी जीना भद्रलोक के सफेद कुर्तों के आरामकुर्सीदार वातावरण में भले ही पहुँचा दे, भले ही हम भद्रलोक की शानदार सादगी तथा आरामदेह चमकीलेपन के रंगों से अपने आसपास के अल्प-भोजियों को अपनी महत्ता का बोध करा दें, भले ही हम अपने मित-भाषण द्वारा बौद्धिक संस्कृति और कलात्मक अभिरुचि की धाक जमा दें, किन्तु हम वह जिन्दगी नहीं जी सकते जिसे मैं, अपने शब्दों में, बिजली भरी तड़पदार जिन्दगी कहता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हूँ। मेरी जिन्दगी जिसमें अछोर, भूरे, तपते, मैदानों का सुनहलापन हो, जिसमें सुलगती कल्पना छूती हुई भावना को पूरा करती है, जिसमें सीने का पसीना हो, और मेहनत के बाद की आनन्दपूर्ण थकन का संतोष हो। बड़ी और वहुत बड़ी जिन्दगी जीना (इम्मेन्स लिविंग) तभी हो सकता है, जब हम मानव की केन्द्रीय प्रक्रियाओं के अविभाज्य और अनिवार्य अंग बनकर जियें। तभी जिन्दगी की बिजली सीने में समायेगी। चाहे प्रगतिवादी हो चाहे-प्रयोगवादी, जिसने भी उच्च-मध्यवर्ग की सफेदपोश भद्रता के महत्त्व की कुर्सियों पर आराम किया कि वह गया, मर गया, ऐसा मेरा ख्याल है। यह ख्याल कुछ लोगों के लिए खतरनाक है—चाहे वे कितने ही प्रगतिवादी या इसके विपरीत बँगले के निवासी तकली-कातू गांधीवादी क्यों न हो। हमारे बहुत-से साथी इसी जिन्दगी में स्वर्ग देखना चाहते हैं और अपने बाल-बच्चों को स्वर्ग दिखाना चाहते हैं।

इस युग का यह अकाट्य सत्य है कि जो व्यक्ति सामाजिक-सांस्कृतिक सीढ़ी पर जितना ऊँचा चढ़ता और बढ़ता है, वह व्यक्ति अपनी भूमि से, अपने ही लोगों से, उतना ही दूर, उतना ही अलग, उतना ही भिन्न, उतना अन्य और उतना ही अपरिचित, उतना ही अजीब और अजनबी हो जाता है—भले ही वह मंच पर चढ़कर जनता की तरफ से बोले, या सौंदर्य-वाद की ओर से या व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की तरफ से भाषण दे। 'सुख-सुविधापूर्ण जीवन' (गुड लिविंग) के फेर में लोग अपने को भूल गये। एक भयानक पार्थक्य की अँधियारे-भरी खाई मुँह-बाये फैली हुई है। जनता में से निकले हुए साहित्यिक भी उच्च-मध्यवर्गीय मनोहर दीप्ति के सम्मोह में स्वजन-परिजनों को विसार गये। महत्त्व के लिए, उन्होंने पार्थक्य को स्वीकार किया। कदाचित्, पार्थक्य के अभाव में महत्त्व रह ही नहीं सकता—ऐसा उनका ख्याल हो।

सिर्फ किनारे पर रहकर, तटस्थ रहकर, अनगुँथे और अनलिपटे रहने वाले लोग वस्तुतः स्वार्थ रक्षा के अपने मूलभूत कार्य को ध्यान में रखकर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही वैसा करते हैं। आज के जीवन-जगत की मूल समस्याओं से—ऐसी समस्याओं से, जो प्रस्तुत वातावरण को घना विषैला बना रही हैं, जो आज के व्यक्तिगत जीवन को भी कठिन और विकृत बना रही हैं—उनसे उन प्रश्नों से, तटस्थ रहना, उनसे किनाराकशी करना गलत है।

बहुतेरे मेरे पहचानवाले लोग, दोस्त, प्रियजन-परिजन—सभी इस बात को किसी न किसी अंश में पहचानते हैं। किन्तु उन प्रश्नों का सही-सही आकलन करके उनको ठीक और सही परिदृश्य में रखकर, उसकी ओर कदम बढ़ाने के लिए तैयार नहीं हैं। हर आदमी अपनी प्राइवेट जिन्दगी जी रहा है। या यों कहिए कि जो उसके व्यावसायिक और पारिवारिक जीवन का दैनिक चक्कर है, उसे पूरा करके सिर्फ निजी जिन्दगी जीना चाहता है। मैं भी वैसा ही कर रहा हूँ। मैं उनसे किसी भी हालत में बेहतर नहीं हूँ। लेकिन क्या इससे पार्थक्य की अभावात्मक सत्ता मिटेगी? क्या इससे मन भरेगा, जी भरेगा? यह बिलकुल सही ख्याल है कि सच्चा जीना तो वह है जिसमें प्रत्येक क्षण आलोकपूर्ण और विद्युत्मय रहे, जिसमें मनुष्य की ऊष्मा को बोध प्राप्त हो।

किन्तु यह तभी सम्भव है जब हम अपने विशिष्टों और सुविशिष्टों की किसी व्यापकता से सम्बद्ध करें, विशिष्ट को व्याप्ति प्रदान करना, केवल बौद्धिक कार्य नहीं है, वह मूर्त, वास्तविक, जीवन-जगत सम्बन्धी कार्य है। तभी उस विशिष्ट को एक अग्निमय वेग और आवेग प्राप्त होगा, जब वह किसी दिशा की ओर प्रधावित होगा। यह दिशा विशिष्ट को व्यापक से सम्बद्ध किये बिना उपस्थित नहीं हो सकती। विशिष्ट को व्यापक से सम्बद्ध किया जाना एक जीवनगत कार्य है, कोई बौद्धिक व्यापार मात्र नहीं।

आज हम देखते हैं कि जीवन-जगत में, गहरा असन्तोषपूर्ण वातावरण है किन्तु इस असन्तोष के तत्व सामाजिक होते हुए भी, उस असन्तोष का स्तर केवल आत्म-क्षेत्र-बद्ध हैं। चिनगारियाँ हैं—राख में पड़ी हुई, उसमें सनी हुई चिनगारियाँ जो जरा हवा लगते ही चमक उठती हैं और तुरन्त ही नष्ट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो जाती हैं। यह असन्तोष निष्फल है, क्योंकि यह किसी व्यापक से संपृक्त नहीं हैं। इस असन्तोष को व्यापक प्रेरणा का रूप तो तब दिया जा सकता है, जब किसी मानवीय लक्ष्य की ओर हम प्रभावित हों। सार्थक जीवन जीने की अभिलाषा रखना एक बात है, उसके अनुसार जीवन निर्मित करना दूसरी बात।

लेकिन, ये सब बातें मैं दूसरों से कहता हूँ, मन-ही-मन, भीतर-ही-भीतर लक्ष्य की ओर प्रधावित होने वाले जीवन की वस्तुस्थिति घटित करने के लिए, सबसे पहले, व्यक्तिगत जीवन पर ही कठोर अनुशासन चाहिए! माना कि परिस्थितियाँ सारी-की-सारी हमारी बनायी नहीं हैं, यद्यपि व्यक्तिगत दायित्व उन्हीं परिस्थियों का हमीं पर है। माना कि सर्वांशतः खुद भी हम अपने बनाये नहीं हैं, यद्यपि अपने वर्तमान आत्म-रूप का बहुत कुछ दायित्व हमीं पर है। मैं अपना ही एक भिन्न विकल्प हो सकता था, किन्तु नहीं हुआ, इसका भी दायित्व मुझी पर है। मेरे विकास और मेरी मुक्ति का दायित्व स्वयं पर है यह मान लेना गलत नहीं। फिर भी अपने जीवन को निर्मित करना एक दुष्कर कार्य है। सिर्फ हम इतना ही कर सकते हैं कि ऊपर से नोच-खरोच करें, इधर या उधर अपना संशोधन कर लें। फिर भी अपने विकास की अनन्त एक-दिशात्मक सम्भावनाओं पर आस्था न रखना और तदनुकूल कार्य न करना मूर्खता है।

हाँ, वह मूर्खता तो है, लेकिन बुद्धिमानी बड़ी कठिन होती है। वह साहित्य निष्फल है जो मूर्खता का और उसके स्रोतों का वस्तुनिष्ठ चित्रण नहीं करता। हम मूर्खता के इतने समीप हैं, किन्तु अपने को बुद्धिमान बताने के लिए बुद्धिमानी की बात करते हैं।

संक्षेप में, उस कविता को लिखने के बाद, मैंने यह महान निर्णय किया कि मेरे लिए कविता लिखना महान् मूर्खता है। अपने अकेले कोने में बैठे हुए मैं अपने अमूल्य समय का दुरुपयोग करता रहता हूँ।

सचमुच बहुत बड़ा दुरुपयोग हुआ। अपने बड़े-से-बड़े उत्तरदायित्व को मैंने उठाकर फेंक दिया। बाल-बच्चों की तरफ नहीं देखा। एक विनाशक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्तेजना और भयानक बेचैनी में दिन-रात गुजारता रहा। स्त्री से भी कह दिया कि मुझसे ज्यादा बात न किया करे, नहीं तो उसे अकारण अपमानित होना पड़ेगा। मेरे अपने इस वर्ताव और क्रूर उपेक्षा के व्यवहार से बहुत दुख होता रहा। दुनिया में ऐसे बहुत-से लोग हुए हैं, और होते आये हैं, जो अपनी धुन के पीछे बरबाद हो गये और उस धुन ने उन्हें कुछ नहीं दिया। उस से न उनका भला हुआ, न संसार का। क्या पुराने कीमियागर उसी तरह के लोग नहीं थे! साइन्स वाले कहते हैं कि कीमियागरी से ही रसायन-शास्त्र का विकास हुआ। कहते होंगे। काव्य-सम्बन्धी मेरे प्रयत्न कीमियागरी से भी बदतर हैं।

क्यों? इसलिए कि कविता लिखने के बाद जो भयानक मनःस्थिति मुझे ग्रस्त कर लेती है, उसका तर्जुबा बहुत कम लोगों को है! और अगर सच-मुच है तो वे बताते नहीं। मुश्किल यह है कि कविता लिख चुकने के अनन्तर, उसी कविता में समायी किन्तु उससे बृहत्तर, विशालतर, सुन्दरतर कविता अपने स्वरूप का विकास करती हुई उद्घाटित कर देती है, और मैं उस प्रतिमा-रूप के प्रति दौड़ पड़ता हूँ। चाहिए, हाँ, मुझे वही प्रतिमा चाहिए। मुझे छोड़ दीजिए, मुझे जाने दीजिए उस नव्यतर के पास।

यदि मैंने वहाँ जाने से इनकार कर दिया तब भी काम नहीं बनता। वह छा जाती है। मेरे मन में ही वह अपना स्वतन्त्र विकास कर लेती है।

किन्तु मेरे इस मानसिक कार्य में किसको दिलचस्पी है? किसी की भी नहीं। स्त्री की नहीं, पुत्रों की नहीं, माता-पिता की नहीं, मित्रों की नहीं, परिचितों की नहीं, सहयोगियों की नहीं—किसी की नहीं। इतना ही क्या कम है, जो मुझे कभी-कभी फुर्सत मिल जाया करती है। मतलब यह कि जहाँ मैं हूँ वहाँ किसी की दिलचस्पी नहीं। मतलब यह कि पार्थक्य का भाव केवल मेरी ओर से ही नहीं, सभी की ओर से है।

फिर मैं क्यों लिखूँ? क्यों न काम बन्द कर दूँ? (बन्द कर दीजिए; भाड़ में जाइए।) लेकिन उन्हें मालूम है कि कभी काम बन्द नहीं करेगा। इस बात को वे जानते हैं और मेरे अस्तित्व को सहन कर लेते हैं। ○ ●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१० | निज भाषा उन्नति अहै...

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के इस कथन में विश्वास करने वाला, इस राजनीतिक युग में सहृदय साहित्यिक के अतिरिक्त कोई न होगा। इसका हेतु यही है कि राजनीति दृष्टपथ में ही बसे वर्त्तमान को ही देखती है और भविष्य की अँधेरी गुफा में भी टटोलने का प्रयास करती है, पर सिर मोड़ कर अतीत की ओर देखने की नहीं सोचती। जो पीछे मुड़कर देखता है वही देख पाता है। भारत की प्राचीन उन्नति पर दृष्टिपात कीजिए तो पता चले कि भारत की उन्नति का हेतु अपनी भाषा थी या नहीं। चाहे वह भारती अमर भारती हो, संस्कृति हो, चाहे पाइअ भारई (प्रकृत भारती) हो, असंस्कृत हो, चाहे अवहट्ठ भारइ (अपभ्रष्ट भारती अपभ्रंश भाषा) हो। भाषा की जितनी उन्नति थी देश की, जाति की, समाज की भी उतनी ही उन्नति थी। यह कभी नहीं हुआ कि भाषा उन्नत हो और देश अवनत, भाषा अवनत हो और देश-समाज उन्नत। संस्कृत की समृद्धि के साथ देश की, समाज की समानांतर समृद्धि को देख लीजिए, मिला लीजिए। ज्यों-ज्यों भाषा की उन्नति या उसका उत्थान हुआ, अवनत समाज भी उत्थित हुआ। इस तर्कशील युग में यह बतलाना आवश्यक है कि ऐसा क्यों होता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है ? ऐसा हुआ है इसके उदाहरण तो प्राचीन इतिहास से सदा मिलेंगे और सर्वत्र मिलेंगे। भारत ही में नहीं, वाहर भी। जिनके पास भाषा नहीं उनके पास सभ्यता नहीं, संस्कृति नहीं। जिनके पास भाषा है, उनकी सभ्यता है; संस्कृति है।

भाषा वह वरदान है जो मनुष्य को मिला है। पशुओं की भाषा नहीं, जानवरों की सभ्यता संस्कृति नहीं। मनुष्य को यह वरदान मिला है आगे बढ़ने के लिये, ज्ञानार्जन के लिये। पशु-पक्षियों को प्रकृति जितना विकसित कर देती है, शारीरिक या वाह्य विकास कर देती है उसी से वे जीवन ढोते हैं, प्रकृति से आगे बढ़ नहीं पाते। भाषा वाले मनुष्यों को प्रकृति से आगे बढ़कर संस्कृति तक जाने का अवसर मिलता है। मनुष्य के बाप-दादे अतीत में जो कमाई करके रख गये हैं, गठियाकर सौंप गये हैं, ग्रन्थ बनाकर संचित कर गये हैं, उसका उपयोग वे आज भी कर रहे है, जानवरों की बपौती नहीं; बाप-दादों की कमाई नहीं, अपना जाँगर, अपना पेट। उनका समाज भी नहीं। स्वार्थ के आगे उनमें परार्थ-परमार्थ नहीं। मनुष्य में ही सब कुछ है पशु 'स्व' के आगे न देखता है और न समझ पाता है। मनुष्य 'पर' के लिए 'स्व' का त्याग करता देखा जाता है। यह सब कैसे वह करता है ? ज्ञान होने से, भाषा होने से। जिसके पास भाषा नहीं उनके पास ज्ञान नहीं। उनका अतीत नहीं। वे सभ्य नहीं। इसे यों भी कह सकते हैं कि जिनके पास भाषा है, उनके पास ज्ञान है। जितनी पुरानी भाषा उतनी ही अधिक सभ्यता, उतना ही अधिक ज्ञान। जब से भाषा का आरम्भ हुआ तभी से सभ्यता; सामाजिकता, संस्कृति का भी विकास हुआ। मनुष्य की उन्नति हुई। भारत का मान संसार में क्यों हुआ ? भाषा के कारण, अपनी भाषा के ज्ञान के कारण। भारतीयों की जो भाषा प्राचीन युग में थी, उसका ज्ञान परम्परागत सभी करते रहे। वैदिक भाषा को सभी रक्षित करते आये। वेद-वृक्ष की जितनी शाखा-प्रशाखाएँ हुई सबने उसे रक्षित रखा। लिखकर नहीं तो सुनकर, स्मरण कर। स्मरण रखकर—श्रुति से। स्मृति से। इतना प्राचीन वाङ्मय संसार की कोई पुरानी से पुरानी जाति भी रक्षित न रख सकी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भारती की प्रतिष्ठा उसकी भाषा के कारण, उसके ज्ञान के कारण है। किसी के बाप-दादों ने घी खाया हो तो वह अपने हाथ सुँघाकर यह प्रतीति किसी को नहीं करा सकता कि हमारे बाप-दादों ने घी खाया ही है। पर किसी के बाप-दादों ने ज्ञानामृत का पान किया हो, विद्यामृत को चखा हो तो वह ग्रन्थों की गाँठ खोलकर कहेगा कि नाक बन्द करो, आँखें फाड़कर देख लो। भारती यही कह रही है।

भारत में अपनी भाषा थी, अपना राज था। दैव-दुर्विपाक से राज अपना न रहा, पर भाषा अपनी रही, राष्ट्रभाषा तो सदा अपनी ही रही है, अपनी ही रहेगी। अपना राज न रहने पर राजभाषा कुछ समय के अनन्तर बदली। पर साहित्य में जो राष्ट्रभाषा निर्माण करती रही उसके कारण पराधीनता के पाश में भी मुक्ति के लिए अवकाश बना रहा। पर संप्रति राजनीति के चक्कर में राष्ट्रभाषा क्या राजभाषा घोषित कर दी गई है। स्वतन्त्रता मिल गई है, पर पराधीनता का बन्धन अभी टूटने वाले नहीं। भाषा और साहित्य की पराधीनता स्वतन्त्र को पराधीन बना देती है। भाषा और साहित्य की स्वतन्त्रता पराधीन को स्वतन्त्र बना सकती है। भारत इसका उदाहरण है, रहेगा। इस देश में विदेशी अंकुश हट जाने पर भी विदेशी भाषा और साहित्य का अंकुश बना रहेगा। भारत स्वतन्त्र होकर परतन्त्र ही रहेगा। इसे गाँठ बाँधिये। निज भाषा का ज्ञान बिना हुए शूल निकल न सकेगा।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते हैं। तो क्या भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी को जन्म दिया। इसके पहले हिन्दी न थी हिन्दी थी, 'हिन्दी-भाषा का व्यवहार किया जाय' इसके आन्दोलन थे, हिन्दी का साहित्य था। फिर हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु कैसे हुए? बात यह है कि हिन्दी-साहित्य और हिन्दी आन्दोलन होने पर भी 'हिन्दी का ज्ञान' न था। हिन्दी का ज्ञान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही आधुनिक समय में सबको कराया। हिन्दी को उन्होंने नया जन्म दिया। हिन्दी की प्रवृत्ति उन्होंने बदली। हिन्दी अपने 'निज' साँचे में ढली। इसी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इसके जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्होंने जो आन्दोलन चलाया वही साहित्य क्षेत्र से चलाया गया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुद्ध आन्दोलन था। इसके पूर्व हिन्दी का जो आन्दोलन था, वह धर्म-गुरुओं द्वारा उठाया आन्दोलन था, वे धर्म-गुरु चाहे विदेशी धर्म के पुरोहित थे, चाहे देशी धर्म के समाजी-सनातनी हों, पुरातनी हों, चाहे अद्यतनी; वे धर्म-प्रचार की दृष्टि से राष्ट्रभाषा की चर्चा करते थे, भावप्रसार आन्दोलन का आरम्भ भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ही समय से हुआ। हिन्दी के ज्ञान का आरम्भ भी वहीं से हुआ।

भारतेन्दु के अनन्तर महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने उसकी ओर अपनी दृष्टि डाली। देश-विदेश की सारी सामग्री उसमें संचित कर देने का उन्होंने व्रत लिया। इसी की प्रतिष्ठा, इसका श्रीगणेश भी भारतेन्दु ही कर गये थे, पर वे शीघ्र काल-कवलित हो गये, इससे अपने उठाये कार्य को चरमावस्था तक न पहुँचा सके। द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य में सब प्रकार की प्रभूत सामग्री एकत्र की, भाषा को साधु भाषा बनाकर उसकी उन्नति की। पर द्विवेदी जी के प्रयास का जो सत्यप्रभाव पड़ना चाहिये था वह न पड़ा, अपने अतीत की ओर न देख, अंग्रेज वर्त्तमान की ओर देखने की वान पड़ने लगी। भारतेन्दु के समय में हिन्दी का आधुनिक भांडार भरने की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी उसमें संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी की ओर झुकाव अधिक था यह ठीक है कि आधुनिक साहित्य का निर्माण बँगला में हिन्दी के पहले ही हो रहा था, हो चुका था, आधुनिक का और कुछ अर्थ नहीं अंग्रेजी की देखा-देखी नूतन प्रवृत्तियों की ओर जाना था। बँगला उधर गई। हिन्दी उधर गई। अंग्रेजी भाषा में आकर्षण था। कारण स्पष्ट है; उनमें लाक्षणिक प्रयोगों का बाहुल्य ही है। भारतीय भाषाओं में उससे यह विशेषता है कि संस्कृत से लेकर हिन्दी तथा सभी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से सम्बद्ध भाषाओं में व्यंजना का प्राधान्य है। यहाँ तक कि फारसी की अनुरागिणी उर्दू में भी लाक्षणिकता अथवा मुहावरे बन्दिश की विशेष प्रवृत्ति होते हुए भी लाक्षणिक भाव-भंगिमा का प्राधान्य नहीं। व्यंजनात्मकता की अभिरुचि उसमें भी है। अतः लाक्षणिकता की ओर बढ़ना आवश्यक जान पड़ा। उर्दू में जो लाक्षणिकता है वह रूढ़ है, बँधी हुई है। बँधे नियमों का त्याग व नये प्रयोग करने पर एक प्रकार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की रोक लगी है।

लाक्षणिक वैलक्षण्य अंग्रेजी में सबसे अधिक है। हिन्दी का ज्ञान न रखने वाले जो इस लाक्षणिकता पर टूटे तो हिन्दी अंग्रेजी होने लगी। आज हिन्दी जो अंग्रेजी की दासी बनी है, उसका यही कारण है। हिन्दी का स्वच्छन्द विकास न होने में अंग्रेजी की नकल ने भारी बाधा पहुँचाई। भारतेन्दु युग के लेखकों की हिन्दी और आधुनिक हिन्दी को सामने रखकर मिला देखिये। एक में हिन्दीपन है, दूसरी में अंग्रेजीपन। समाचार-पत्रों ने तो अंग्रेजी से शब्दानुवाद करके हिन्दी की ऐसी रीढ़ मारी है कि उसके खड़े होने में समय लगेगा। खड़ी बोली बैठ गयी है, अंग्रेजी की मार से, उसके भार से। आज तो पर्यायवाची शब्द बन रहे हैं उनमें हिन्दीपन क्यों नहीं मिलता। उत्तर है—अंग्रेजी की मार से। हिन्दी का स्वच्छन्द विकास रुक गया। कोई नया प्रयोग हिन्दी का अपना खोजने से नहीं मिलेगा। अंग्रेजी के प्रयोगों का शब्दानुवाद पंक्ति-पंक्ति में मिल जायगा। हिन्दी का, निज भाषा का ज्ञान नहीं रह गया। पहले हिन्दी के लेखक बँगला से, गुजराती के, मराठी के अनुवाद करते थे, उनमें न बँगलापन आता था, न गुजराती, न मराठीपन। हाँ बंगाली के, गुजराती के, अनेक शब्द आये, चले, आज भी चलते हैं। हिन्दी अपनापन लिये रही। अजी, अब तो अंग्रेजी का मोह छोड़ो। यदि कुछ दूसरापन लेना ही है तो क्यों नहीं बँगलापन, गुजरातीपन, मराठीपन, तामिलपन अपनाते। जिन भाषाओं के सम्पर्क में हिन्दी बहुत दिनों तक रही, जिनके बीच उसे रहना है। अंग्रेजी से विदेशी से, अपना गला छुड़ा लो। देशी कों अपनाओ। हिन्दी को सच्ची भारती बनाओ। अन्य भाषा-भाषी यदि यह समझते हैं कि हम पर हिन्दी का साम्राज्य लद रहा है तो क्यों नहीं उन्हीं का साम्राज्य हिन्दी पर लादने देते। इससे हिन्दी की कोई क्षति न होगी। उसका बल बढ़ेगा। उसकी समन्वय-साधना दृढ़ होगी। भारतीय भाषाओं का मूल एक है, फिर हिन्दी के विकास में उनका सहयोग, उनका लदाव कभी बाधक न होगा। क्यों नहीं कह दिया जाता कि हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगू, कन्नड़; मलयालम आदि सभी भारतीय भाषाओं का विकास अपना विकास समझती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। बँगला का विकास हिन्दी का ही विकास है, तमिल का विकास हिन्दी का ही विकास है, आदि आदि।

हिन्दी जिस सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है, क्या उससे भिन्न किसी संस्कृति के संवर्धन में देशी भाषाएँ सलग्न हैं या हो सकती हैं ? कदापि नहीं। फिर एक निकास से दूसरी का विकास क्यों नहीं। भावुकता नहीं, तर्क की साक्षी से कहा जा सकता है। इसी से भारतेन्दु की उक्ति आज भी ज्यों की त्यों है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

निज को पहचानो, उसकी व्याप्ति को जानो। 'पर' को त्यागो।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

११ सदाचार का तावीज

हरिशंकर परसाई

एक राज्य में हल्ला मचा कि भ्रष्टाचार बहुत फैल गया है।

राजा ने एक दिन दरबारियों से कहा—"प्रजा बहुत हल्ला मचा रही है कि सब जगह भ्रष्टाचार फैला हुआ है। हमें तो आज तक कहीं नहीं दिखा। तुम लोगों को कहीं दिखा हो तो बताओ।"

दरबारियों ने कहा—"जब हुजूर को नहीं दिखा तो हमें कैसे दिख सकता है?"

राजा ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं है। कभी-कभी जो मुझे नहीं दिखता वह तुम्हें दिखता होगा। जैसे मुझे बुरे सपने कभी नहीं दिखते पर तुम्हें तो दिखते होंगे।"

दरबारियों ने कहा—"जी, दिखते हैं। पर वह सपनों की बात है।"

राजा ने कहा—"फिर भी तुम लोग सारे राज्य में ढूंढ़कर देखो कि कहीं भ्रष्टाचार तो नहीं है। अगर कहीं मिल जाये तो हमारे देखने के लिए नमूना लेते आना। हम भी तो देखें कि कैसा होता है।"

एक दरबारी ने कहा—हुजूर, वह हमें नहीं दिखेगा। सुना है, वह बहुत बारीक होता है। हमारी आँखें आपकी विराटता देखने की इतनी आदी हो गयी हैं कि हमें बारीक चीज़ नहीं दिखतीं। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसमें हमें आपकी ही छवि दिखेगी क्योंकि हमारी आँखों में तो आपकी ही सूरत बसी है। पर अपने राज्य में एक जाति रहती है जिसे 'विशेषज्ञ' कहते हैं। इस जाति के पास कुछ ऐसा अंजन होता है कि आँखों में आँजकर वे बारीक से बारीक चीज भी देख लेते हैं। मेरा निवेदन है कि इन विशेषज्ञों को ही हुजूर भ्रष्टाचार ढूँढ़ने का काम सौंपें।"

राजा ने 'विशेषज्ञ' जाति के पाँच आदमी बुलाये और कहा—"सुना है, हमारे राज्य में भ्रष्टाचार है। पर वह कहाँ है, यह पता नहीं चलता। तुम लोग उसका पता लगाओ। अगर मिल जाय तो पकड़कर हमारे पास ले आना। अगर बहुत हो तो नमूने के लिए थोड़ा-सा ले आना।"

विशेषज्ञों ने उसी दिन से छान-बीन शुरू कर दी।

दो महीने बाद वे फिर से दरबार में हाजिर हुए।

राजा ने पूछा—"विशेषज्ञों, तुम्हारी जाँच पूरी हो गयी ?"

"जी, सरकार।"

"क्या तुम्हें भ्रष्टाचार मिला ?"

"जी, बहुत-सा मिला।"

राजा ने हाथ बढ़ाया—"लाओ मुझे बताओ। देखूं, कैसा होता है।"

विशेषज्ञों ने कहा—"हुजूर, वह हाथ की पकड़ में नहीं आता। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, अगोचर है पर सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।

राजा सोच में पड़ गये। बोले—"विशेषज्ञों, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है। ये गुण तो ईश्वर के हैं। तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है ?"

विशेषज्ञों ने कहा—"हाँ, महाराज, अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है।"

एक दरबार ने पूछा—"पर वह है कहाँ ? कैसे अनुभव होता है ?"

विशेषज्ञों ने जवाब दिया—"वह सर्वत्र है। वह इस भवन में है। वह महाराजा के सिंहासन में है।"

"सिंहासन में है ?"—कहकर राजासाहब उछलकर दूर खड़े हो गये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेषज्ञों ने कहा—"हाँ, सरकार, सिंहासन में है। पिछले माह इस सिंहासन पर रंग करने के जिस बिल का भुगतान किया गया है, वह बिल झूठा है। वह वास्तव में दुगने दाम का है। आधा पैसा बीच वाले खा गये। आपके पूरे शासन में भ्रष्टाचार है और वह मुख्यतः घूस के रूप में है :"

विशेषज्ञों की बात सुनकर राजा चिन्तित हुए और दरबारियों के कान खड़े हुए।

राजा ने कहा—"यह तो बड़ी चिन्ता की बात है। हम भ्रष्टाचार बिलकुल मिटाना चाहते हैं। विशेषज्ञों, तुम बता सकते हो कि वह कैसे मिट सकता है ?"

विशेषज्ञों ने कहा—"हाँ, महाराज, हमने उसकी भी योजना तैयार की है। भ्रष्टाचार मिटाने के लिए महाराज को व्यवस्था में बहुत परिवर्तन करने होंगे। एक तो भ्रष्टाचार के मौके मिटाने होंगे। जैसे ठेका है तो ठेकेदार है। और ठेकेदार है तो अधिकारियों को घूस है। ठेका मिट जाये तो उसकी घूस मिट जाये। इसी तरह और बहुत-सी चीजें हैं। किन कारणों से आदमी घूस लेता है, यह भी विचारणीय है।"

राजा ने कहा—"अच्छा तुम अपनी पूरी योजना रख जाओ। हम और हमारा दरबार उस पर विचार करेंगे।"

विशेषज्ञ चले गये।

राजा ने और दरबारियों ने भ्रष्टाचार मिटाने की योजना को पढ़ा। उस पर विचार किया।

विचार करते दिन बीतने लगे और राजा का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा।

एक दिन एक दरबारी ने कहा—"महाराज, चिन्ता के कारण आपका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। उन विशेषज्ञों ने आपको झंझट में डाल दिया।"

राजा ने कहा—"हाँ, मुझे रात को नींद नहीं आती"

दूसरा दरबारी बोला—"ऐसी रिपोर्ट को आग के हवाले कर देना चाहिए जिससे महाराज की नींद में खलल पड़े।'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजा ने कहा—"पर करें क्या ? तुम लोगों ने भी भ्रष्टाचार मिटाने की योजना का अध्ययन किया है। तुम्हारा क्या मत है ? क्या उसे काम में लाना चाहिए ?"

दरबारियों ने कहा—"महाराज, वह योजना क्या हैं, एक मुसीबत है। उसके अनुसार कितने उलट-फेर करने पड़ेंगे ! कितनी परेशानी होगी। सारी व्यवस्था उलट-पलट हो जायेगी। जो चला जा रहा है, उसे बदलने से नयी-नयी कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं। हमें तो कोई ऐसी तरकीब चाहिए जिससे बिना कुछ उलट-फेर किये भ्रष्टाचार मिट जाये।"

राजा साहब बोले—"मैं भी यही चाहता हूँ। पर यह हो कैसे ? हमारे प्रपितामह को तो जादू आता था; हमें वह भी नहीं आता ! तुम लोग ही कोई उपाय खोजो।"

एक दिन दरबारियों ने राजा के सामने एक साधु को पेश किया और कहा—"महाराज, एक कन्दरा में तपस्या करते हुए इस महान् साधक को हम ले आये हैं। इन्होंने सदाचार का तावीज़ बनाया है। वह मन्त्रों से सिद्ध है और उसके बाँधने से आदमी एकदम सदाचारी हो जाता है।

साधु ने अपने झोले में-से एक तावीज़ निकाल कर राजा को दिया। राजा ने उसे देखा। बोले—"साधु, इस तावीज़ के विषय में मुझे विस्तार से बताओ। इससे आदमी सदाचारी कैसे हो जाता है।"

साधु ने समझाया—"महाराजा, भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है; बाहर से नहीं होता। विधाता जब मनुष्य को बनाता है तब किसी की आत्मा में ईमान की कल फिट कर देता है और किसी की आत्मा में बेईमानी की। इस कल में-से ईमान या बेईमानी के स्वर निकलते हैं जिन्हें 'आत्मा की पुकार' कहते हैं। आत्मा की पुकार के अनुसार ही आदमी काम करता है। प्रश्न यह है कि जिनकी आत्मा से बेईमानी के स्वर निकलते हैं, उन्हें दबाकर ईमान के स्वर कैसे निकाले जायें ? मैं कई वर्षों से इसी के चिन्तन में लगा हूँ। अभी मैंने यह सदाचार का तावीज़ बनाया है। जिस आदमी की भुजा पर यह बँधा होगा, वह सदाचारी जायेगा। मैंने कुत्ते पर भी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रयोग किया है । यह तावीज़ गले में बांध देने से कुत्ता भी रोटी नहीं चुराता। बात यह है कि इस तावीज में-से भी सदाचार के स्वर निकलते हैं । जब किसी की आत्मा बेईमानी के स्वर निकालने लगती है तब इस तावीज़ की शक्ति आत्मा का गला घोंट देती है और आदमी को तावीज़ से ईमान के स्वर सुनाई पड़ते हैं । वह स्वरों को आत्मा की पुकार समझकर सदाचार की ओर प्रेरित होता है । यही इस तावीज़ का गुण है, महाराज !"

दरबार में हलचल मच गयी । दरबारी उठ-उठकर तावीज़ को देखने लगे ।

राजा ने खुश होकर कहा—"मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्य में ऐसे चमत्कारी साधु भी हैं । महात्मन, हम आपके बहुत आभारी हैं । आपने हमारा संकट हर लिया । हम सर्वव्यापी भ्रष्टाचार से बहुत परेशान थे । मगर हमें लाखों नहीं, करोड़ों तावीज़ चाहिए । हम राज्य की ओर से तावीज़ों का कारखाना खोल देते हैं । आप उसके जनरल मैनेजर बन जायें और अपनी देख-रेख में बढ़िया तावीज़ बनवायें ।"

एक मन्त्री ने कहा—"महाराज, राज्य क्यों झंझट में पड़े ? मेरा तो निवेदन है कि साधु बाबा को ठेका दे दिया जाये । वे अपनी मण्डी से तावीज़ बनवा कर राज्य को सप्लाई कर देंगे ।"

राजा को यह सुझाव पसन्द आया । साधु को तावीज़ बनाने का ठेका दे दिया गया । उसी समय उन्हें पांच करोड़ रुपये कारखाना खोलने के लिए पेशगी मिल गये ।

राज्य के अखबारों में खबरें छपीं—'सदाचार के तावीज़ की खोज !' 'तावीज़ बनाने का कारखाना खुला !'

लाखों तावीज़ बन गये । सरकार के हर सरकारी कर्मचारी की भुजा पर एक-एक तावीज़ बांध दिया गया ।

भ्रष्टाचार की समस्या का ऐसा सरल हल निकल आने से, राजा और दरबारी सब खुश थे ।

एक दिन राजा की उत्सुकता जागी । सोचा—"देखें तो कि यह तावीज़

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कैसे काम करता है।"

वह वेश बदलकर एक कार्यालय गये। उस दिन दो तारीख थी। एक दिन पहले तनख्वाह मिली थी।

वह एक कर्मचारी के पास गये और कई काम बताकर उसे पाँच रुपये का नोट देने लगे।

कर्मचारी ने उन्हें डाँटा—"भाग जाओ यहाँ से! घूस लेना पाप है।"

राजा बहुत खुश हुए। तावीज़ ने कर्मचारी को ईमानदार बना दिया था।

कुछ दिन बाद वह फिर वेश बदलकर उसी कर्मचारी के पास गये। उस दिन इकतीस तारीख थी—महीने का आखिरी दिन।

राजा ने फिर उसे पाँच का नोट दिखाया और उसने लेकर जेब में रख लिया।

राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोले—"मैं तुम्हारा राजा हूँ। क्या तुम आज सदाचार का तावीज़ बाँधकर नहीं आये?"

"बाँधा है, सरकार, यह देखिए।"

उसने आस्तीन चढ़ाकर तावीज़ दिखा दिया।

राजा असमंजस में पड़ गये। फिर ऐसा कैसे हो गया?

उन्होंने तावीज़ पर कान लगाकर सुना तावीज़ में से स्वर निकल रहे थे—"अरे, आज इकतीस है। आज तो ले ले।"

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No...

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi